बी.एच.आई.सी.–103

भारत का इतिहास – II

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. कपिल कुमार (संयोजक)
इतिहास विभाग के अध्यक्ष
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. माक्खन लाल
संस्थापक, निदेशक एवं प्रोफेसर
दिल्ली का विरासत अनुसंधान
और प्रबंधन, नई दिल्ली

पी. के. बंसत
इतिहास और संस्कृति विभाग
मानविकी एवं भाषा विभाग
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

डा. संगीता पांडे
इतिहास विभाग,
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. डी. गोपाल
निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समंव्यक : प्रो. नंदिनी सिन्हा कपूर

पाठ्यक्रम संयोजन दल

प्रो. नंदिनी सिन्हा कपूर डा. शुचि दयाल डा. अभिषेक आनंद

पाठ्यक्रम निर्माण दल

इकाई संख्या	पाठ्यक्रम लेखक
1 और 2	प्रो. सुचंद्रा घोष, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकता
3*	डा. राजन गुरूक्कल, प्रो. एवं निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, महात्मा गांधी विश्वविद्यालय, कोट्टायम, केरल
	प्रो. एच. पी. रे (सेवानिवृत्त), इतिहास अध्ययन केन्द्र, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
	प्रो. राघव वारियर, इतिहास विभाग, कैलिकट विश्वविद्यालय, केरल
4 एवं 13	सुश्री जोएता पाल, पी. एच.डी. छात्रा, इतिहास अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
5 और 8	डा. सयंतनी पाल, प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति विभाग, कलकत्ता वि ववविद्यालय, कोलकता
6	डा. विनायक, सहायक प्रोफेसर, इंद्रप्रस्थ कॉलेज फॉर वुमन, दिल्ली विश्वविद्यालय
7 एवं 14	डा. ओली रॉय, सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग, एमिटी विश्वविद्यालय, नोएडा
9**	प्रो. बी. डी. चट्टोपाध्याय (सेवा निवृत), इतिहास अध्ययन केन्द्र, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
	डा. भुपेश चंद्र, इतिहास विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ
	डा. विश्व मोहन झा, इतिहास विभाग, ऐ. आर. एस. डी. कॉलेज, दिल्ली वि ववविद्यालय
10	डा. संघमित्रा राय वर्मन इतिहास की सहायक प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय

11 डा. ऋचा सिंह, इतिहास अध्ययन केन्द्र से पीएचडी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

12*** डा. वि वमोहन झा, इतिहास विभाग, ऐ. आर. एस. डी. कॉलेज, दिल्ली वि ववविद्यालय

प्रो. आर. चंपकलक्ष्मी, इतिहास की पूर्व प्रोफेसर, इतिहास अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

15 एवं 17 डां. आवंतिका शर्मा, सहायक प्रोफेसर इन्द्रप्रस्थ कॉलेज फॉर वुमन, दिल्ली विश्वविद्यालय

16 डा. शुचि दयाल, शैक्षणिक सलाहकार, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

18 डा. अभिषेक आनंद, सलाहकार, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

* ये इकाई **ई.एच.आई.–02** (भारतः प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवीं), **खंड 7**: (दक्षिण भारत में राज्य और समाज : 200 ईसा पूर्व से 300 ईस्वी), **इकाइयां 27** (दक्कन में प्रारंभिक राज्य निर्माण) और **28** (दक्षिण भारत में आरंभिक राज्य की उत्पत्ति (तमिल क्षेत्र) से ग्रहित की गई है।

** यह इकाई **ई.एच.आई.–02** (भारतः प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवी), **खंड 8** (भारतीय राजतंत्र : 300 ई. से 800 ई. तक), **इकाई 35** (दक्खन और दक्षिण भारत में राज्य) से ग्रहित की गई है।

*** ये इकाई **एम.एच.आई–05** (भारतीय अर्थव्यवस्था का इतिहास), **खंड 3** (प्रारंभिक मध्यकालीन अर्थव्यवस्था और उसकी निरन्तरताएँ), **इकाई 11** (कृषि एवं शिल्प उत्पादन का संगठन : उत्तर भारत, लगभग 550–1300 ईसवी), एवं **इकाई 13** (कृषि एवं शिल्प उत्पादन का संगठन, कृषक समाज की क्षेत्रीय रूपरेखा तथा स्तरीकरण का स्वरूप : दक्षिण भारत, लगभग 300–1300 ईसवी) से ग्रहित की गई है।

सामग्री, प्रारूप और भाषा संपादन प्रो. नंदिनी सिन्हा कपूर, डा. शुचि दयाल

अनुवाद	**ग्राफिक्स**	**कवर डिजाइन**	**पुनरीक्षण (Vetting)**
बिरेन्द्र साह	डा. शुचि दयाल	श्री आरिफ नकवी	डा. शुचि दयाल
धर्मराज कुमार		श्री विश्वनाथन	डा. अभिषेक आनंद
अनिता चौधरी		डा. शुचि दयाल	
डा. पूजा मिश्रा		इग्नू, नई दिल्ली	
कल्याणी			

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्य विवरण

खंड 1	**भारत : 200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. तक**
इकाई 1	शुंग और कुषाण
इकाई 2	क्षेत्रीय शक्तियों का उदय
इकाई 3	दक्कन और *तमिलाहम्* में आरंभिक राज्य निर्माण
इकाई 4	कृषि बस्तियाँ और कृषि समाज : प्रायद्वीपीय भारत
इकाई 5	व्यापार संजाल (Networks) और शहरीकरण
खंड 2	**गुप्त और गुप्तोत्तर राज्य एवं समाज**
इकाई 6	गुप्त वंश का उदय : अर्थव्यवस्था, समाज और राज्य व्यवस्था
इकाई 7	उत्तर भारत में उत्तर–गुप्त राज्य
इकाई 8	हर्ष और कन्नौज का उदय
इकाई 9	दक्कन और दक्षिण भारत के राज्य
खंड 3	**आरंभिक मध्ययुगीन भारत की ओर संक्रमण**
इकाई 10	व्यापार और शहरीकरण
इकाई 11	महिलाओं की स्थिति
इकाई 12	शिल्प और शिल्पकार
इकाई 13	धर्म एवं धार्मिक प्रथाएँ
खंड 4	**सांस्कृतिक विकास**
इकाई 14	भाषा और साहित्य
इकाई 15	मूर्तिकला एवं वास्तुकला
इकाई 16	विज्ञान और प्रौद्योगिकी
इकाई 17	अर्थव्यवस्था और व्यापार
इकाई 18	पर्यावरण, वन और जल संसाधन

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए दिशानिर्देश

इस पाठ्यक्रम में हमने शिक्षण सामग्री को प्रस्तुत करने के लिए एक समान पैटर्न का पालन किया है। यह पाठ्यक्रम महत्वपूर्ण घटनाओं को एक कालानुक्रमिक क्रम में रेखांकित करते हुये एक परिचय के साथ शुरू होता है। इसमें 18 इकाइयाँ है। अध्ययन की सुविधा के लिए सभी इकाईयों को एक समान सूचना के साथ प्रस्तुत किया गया है। इकाई के पहले भाग में उद्देश्य यह जानने में मदद करते है कि आपको इकाई के अध्ययन से क्या सीखने की उम्मीद है। कृप्या इन उद्देश्यों को ध्यान से देखें और इकाई के कुछ भागों का अध्ययन करने के बाद उन्हें प्रतिबिंबित और जाँचते रहे। इकाई की प्रस्तावना आपको संबंधित विषय क्षेत्रों से परिचित कराता है और आपको विषय–वस्तु प्रस्तुत करने के तरीकों के बारे में बताता है। इसके बाद भाग व उप–भाग के माध्यम से मुख्य विषय क्षेत्र पर चर्चा की गई है ताकि वह आसानी से समझ आ सके।

पाठ के बीच में कुछ बोध प्रश्न प्रदान किये गये है। हम अपको सलाह देते है कि जब आप उन तक पहुंचे, तो इनका प्रयास करे। ये आपके अध्ययन का आंकलन करने व विषय की अपनी समझ का परिक्षण करने में आपकी मदद करेंगे। सारांश के बाद दिए गए उत्तर के दिशानिर्देशों के साथ अपने उत्तरों की तुलना करें। प्रमुख शब्दों और अपरिचित शब्दों को शब्दावली के माध्यम से समझाया जाता है। इकाई के अंत में हमने संदर्भ ग्रंथ के तहत पुस्तकों और लेखों की एक सूची भी प्रदान की है। इनमें वे स्रोत शामिल है जो संबंधित इकाई के लिए सामग्री विकसित करने के लिए उपयोगी है या उनसे सलाह ली गयी है। आपको उनका अध्ययन करने का प्रयास करना चाहिए; वे विषय वस्तु को समग्र रूप से समझने और सीखने में आपकी सहायता करेंगे।

पाठ्यक्रम परिचय

इतिहास समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। यह सिर्फ अतीत को समझने तक सीमित नहीं है। यह वर्तमान के बारे में भी है। इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि एक संस्कृति, समाज या देश परिवर्तन के दौर से कैसे गुजरता है। कोई भी संस्कृति स्थिर नहीं है। संस्कृतियाँ बदल जाती है, वे कई परिवर्तनों से गुजरती हैं। कुछ परिवर्तन इतने धीमे और क्रमिक होते हैं कि वे बाद में ही स्पष्ट होते हैं, जब हम इतिहास का अध्ययन करते है। इतिहास का लाभ यह है कि यह हमें दीर्घकालिक दृष्टिकोण प्रदान करता है। इससे उन परिवर्तनों की महत्ता की पहचान करनी संभव हो जाती है जो इसने मामूली होते है कि वे ज्यादातर लोगों के लिए महत्वहीन दिखाई देते हैं। हालाँकि, ऐसे परिवर्तन जब दीर्घविधि के परिप्रेक्ष्य से देखे जाते हैं, तो हम समझ सकते है कि आधुनिक दुनिया विकास की लंबी शताब्दियों में कैसे उभरी है, राजाओं और रानियों ने सदियों को कैसे परिवर्तित किया है, कैसे सामान्य पुरूषों और महिलाओं ने अपने जीवन में बदलाव किया है और बदलाव लाया है। इस प्रकार इतिहास न केवल अभिजात वर्ग के जीवन और गतिविधियों के बारे में है, बल्कि सामान्य पुरूषों और महिलाओं, बच्चों और अन्य लिंगों के बारे में भी है जिन्होंने समाज के लिए उतना ही योगदान दिया है जितना राजाओं और रानियों ने दिया है। इतिहास केवल राजनीतिक घटनाओं के बारे में ही नहीं है, यह समाज में होने वाले हर विषय के बारे में है। न केवल असाधारण बल्कि साधारण भी वर्तमान पाठ्यक्रम में अध्ययन का विषय होगा।

हमें यह महसूस करना चाहिए कि जो बात पहली बार में महत्वहीन व नीरस प्रतीत होती है, वह बहुत अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तनों को समझने की कुंजी हो सकती है।

प्राचीन भारतीय इतिहास का पाठ्यक्रम (भारत का इतिहास II) जिसका आप अध्ययन करने जा रहे हैं, उसे चार **खंडों** में विभाजित किया गया है। प्रत्येक खंड में कई इकाइयाँ हैं। हर खंड में किसी युग विशेष से संबंधित एक प्रमुख विषयवस्तु है जो हमारे देश के प्राचीन काल के इतिहास के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं। **भारत का इतिहास II (बीएचआईसी–103)** पर वर्तमान पाठ्यक्रम, मौर्यकाल के बाद से शुरू होता है क्योंकि इससे पहले का इतिहास हम **भारत का इतिहास I (बीएचआईसी–101)** में शामिल कर चुके है। मौर्य काल के बाद के इतिहास पर मौर्यों का गहरा प्रभाव पड़ा। यद्यपि भारतीय उप–महाद्वीप पर एक क्षेत्र या एक शासक परिवार की राजनीतिक शक्ति समाप्त हो गई थी लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि समाज में गिरावट या रूकावट आ गई थी। दूसरी ओर, साम्राज्य ने कई क्षेत्रों में बदलाव की प्रक्रिया आरंभ की थी, और परिवर्तन की ये प्रक्रियाएँ मौर्य काल के बाद परिपक्वता के स्तर तक पहुँच गई। इस पाठ्यक्रम का **पहला खंड** एक व्यापक खंड है जो इस प्रकार के परिवर्तनों से संबंधित है। पहली दो इकाइयाँ कुछ नई विशेषताओं से निपटती हैं जो उत्तर भारत के राजनीतिक इतिहास का हिस्सा बन गई। मध्य एशिया में जनसंख्या गतिविधियों ने उत्तर और उत्तर–पश्चिम भारत की राजनीतिक स्थिति पर प्रभाव डाला। बैक्ट्रियन ग्रीक, सीथियन, पार्थियन और बाद में कुषाण मध्य एशिया से उत्तर और उत्तर पश्चिम भारत में चले आए। वे जल्द ही भारतीय उप–महाद्वीप की आबादी का हिस्सा बन गए।

उन्होंने मौर्यकाल के बाद के उत्तर भारत के राजनीतिक मानचित्र मौर्यकालीन भारत के राजनीतिक मानचित्र से काफी अलग बनाया। इकाई 3 प्रायद्वीपीय भारत की चर्चा करता है जिसमें दक्कन और सूदूर दक्षिण दोनों शामिल थे। यहाँ के पहले शासक स्थानीय राजा और कुछ महत्वपूर्ण परिवार थे, जैसे कि महारठी, जिन्होंने दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. में अपने स्वयं के सिक्कों का चलन स्थापित किया। हालांकि, दक्कन में पहला संगठित राज्य सातवाहनों द्वारा बनाया गया था। सूदूर दक्षिण में, वर्तमान तमिलनाडु और केरल के प्रतिनिधित्व वाले क्षेत्र में, इस अवधि में एक समान परिवर्तन नहीं हुआ। दक्षिण के अलग–अलग क्षेत्रों में शक्ति उन सरदारों के हाथों में थी जिनके बारे में जानकारी भाटों द्वारा उनकी प्रशंसा में लिखी कविताओं के द्वारा हमें मिलती है। उनमें चोल, पांडय व चेर सरदार राजाओं के भांति थे जो प्रचुर कृषि संसाधनों और व्यापार से अर्जित लाभ के स्वामी थे। तमिलाहम् का समाज परिवर्तनों से गुजर रहा था और इसे एक संरचना वाला समाज नहीं समझा जा सकता। सूदूर दक्षिण के विभिन्न उप–क्षेत्रों के बीच कई अंतर थे। आरंभिक तमिल कविता संग्रहों में विभिन्न उप–क्षेत्रों में जीवन की विभिन्न शैलियों में अंतर व्यक्त किए गए है। संगम के रूप में ज्ञात इन आरंभिक तमिल कविता संग्रहों में विभिन्न उप–क्षेत्रों जैसे पहाड़ी क्षेत्रों, नदी–घाटियों, तटिय क्षेत्रों, घास के मैदानों को विभिन्न तिनैं (पारिस्थितिकीय क्षेत्र) के रूप में देखा गया। इन कविताओं में चोल, चेर व पांडय प्रमुखों का उल्लेख है जो नदी घाटियों को नियंत्रित कर रहे थे जहां कृषि बस्तियों का विस्तार हो रहा था और इसके अलावा तटिय बंदरगाहों का भी विस्तार हो रहा था जो समृद्ध व्यापार के कारण आर्कषक हो

गये थे। यह विषय मुख्य रूप से इकाई 5 में निपटाया गया है। भारतीय उपमहाद्वीप ने मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया के कुछ हिस्से, उत्तरी मिस्र सहित भूमध्यसागरीय दुनिया और कुछ हद तक दक्षिण पूर्व एशिया और चीन के साथ संबंध विकसित कर लिए थे। ये संपर्क केवल व्यापारी उत्पादों के आयात और निर्यात तक सीमित नहीं थे। उनका संबंध लोगों और विचारों के आदान प्रदान से भी था। नगर और शहर जो बहुत पहले उत्पन्न हो चुके थे, अब अपने सबसे समृद्ध चरण में पहुँच गये थे।

खंड II मुख्य रूप से उत्तर भारत और प्रायद्वीपीय भारत, दोनों के राजनीतिक इतिहास पर चौथी शताब्दी की शुरूआत से आठवीं शताब्दी सी.ई. तक केंद्रित है। हम पहले ही जान चुके है कि मौर्य काल के उपरांत कई शासक परिवार उभरे। यह इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि अधिक से अधिक क्षेत्र स्थानीय राज्यों के उद्‌भव का अनुभव कर रहे थे। इनका नेतृत्व स्थानी शासक परिवारों द्वारा किया जा रहा था। दूसरे, जब एक बड़ी राज्य की संरचना का उदय हुआ, इन छोटे स्थानीय राज्यों ने या तो अपना अलग अस्तित्व खो दिया या वे बड़े राज्यों के अधीनस्थों के रूप में जारी रहे। एक ऐसी बड़ी राज्य संरचना जो चौथी शताब्दी सी.ई. की शुरूआत से उभरना शुरू हुई थी, वह थी गुप्तवंश। इकाई 6 में आप गुप्तकाल के इतिहास के राजनीतिक और अन्य पहलुओं के बारे में पढ़ेंगे। गुप्तकाल के प्रशासनिक, आर्थिक और सामाजिक पहलुओं पर भी प्रकाश डाला जाएगा। गुप्तोत्तर काल में, उत्तर भारत के विभिन्न भागों में कई नई राजनीतिक शक्तियों का उदय हुआ (इकाई 7 और 8)। वे यह आभास दे सकते हैं कि राजनीतिक प्राधिकरण बहुत ही खंडित था और यह केन्द्रिय सत्ता के कमजोर पड़ने

का परिणाम था। हालांकि, एक अलग कोण से देखे जाने पर, पता चलता है कि कई राजनीतिक शक्तियों का उद्भव प्रारंभिक भारतीय इतिहास में एक सतत् प्रक्रिया थी। इसके अतिरिक्त गुर्जर–प्रतिहारों या हर्ष के राज्य एक पीढ़ी से अधिक समय तक चली। वे अधिक स्थिर थे, उनके पास उन क्षेत्रों में उनके आधार थे जिनमें वे उभरें थे और कई मामलों में उन्होंने एक क्षेत्र या उप–क्षेत्र की राजनीतिक पहचान की शुरूआत को चिन्हित किया था। इकाई 9 में आप उन राज्यों के बारे में पढ़ेंगे जो उत्तर–सातवाहन काल में प्रायद्वीपीय भारत में उभरे। यहाँ भी आप देखेंगे कि छोटे शासक परिवार धीरे–धीरे तटीय तमिलनाडु के पल्लवों और उत्तरी कर्नाटक के बादामी चालुक्य के अधीनस्थ बन गये। पल्लव और चालुक्य शक्ति का आधार क्रमशः तमिलनाडु और कर्नाटक में महत्वपूर्ण राजनीतिक उप–क्षेत्र थे।

खंड III गुप्त व गुप्त काल के बाद के समय में होने वाले परिवर्तनों को संबोधित करेगा। आप सीखेंगे कि भारतीय इतिहास में एक नई अवधि की शुरूआत को ये परिवर्तन कैसे चिन्हित करते हैं। इतिहासकारों को लगता है कि भारतीय इतिहास का प्राचीन चरण अब समाप्ति पर था, और इस अवधि में जो लगभग छठी शताब्दी से लेकर आठवीं शताब्दी के बीचकी है, आप देखेंगे कि इतिहास के एक चरण से दूसरे चरण में परिवर्तन केवल एक शासक परिवार से दूसरे में परिवर्तन या यहाँ तक कि गुप्त साम्राज्य से तुलनात्मक रूप में महत्वहीन स्थानीय राज्यों के उदय का परिवर्तन नहीं था। यह एक बदलाव था जिसने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को नया आकार दिया: राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक इत्यादि। राजनीतिक सत्ता का आधार भूमि पर

नियंत्रण था। राजाओं द्वारा भूमि के अनुदान ने एक ऐसे भू–स्वामियों का स्तर बनाया, जो अपने–अपने क्षेत्रों में राजनीतिक नियंत्रण भी कायम कर रहे थे। एक नई तरह की राजनीति का उदय हुआ, जिसमें न केवल राजा राजनीतिक अधिकार का प्रतीक था, बल्कि विभिन्न प्रकार के राजनीतिक अधिकारियों ने भी राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी का दावा किया। ब्राह्मणों, मंदिरों और अन्य लाभार्थियों को भूमि अनुदान कृषि और राजस्व प्रणालियों में बड़े बदलाव की ओर इशारा करता है। व्यापार और शहरीकरण में गिरावट (इकाई 10 और 12) ने अर्थव्यवस्था पर काफी दबाव डाला जो अनिवार्य रूप से भूमि संसाधनों पर निर्भर थी। बेशक पहली सहस्राब्दी सी.ई. के अंत तक व्यापार का पुनरूद्धार हो गया था। व्यापार और शहरी केन्द्रों की गिरावट उन विद्वानों के बीच एक जीवंत बहस का विषय है जो या तो इस अवधि को सामंतवाद और क्षय के रूप में देखते है, या इसके विपरीत, इस अवधि को गतिशील मानते है। 7–13 शताब्दियों के बीच कृषि का विस्तार हुआ। कृषि में सुधार और गांवों के अनुदान व आसीन बस्तियों के विस्तार से नकदी फसलों की खेती हुई जिसने कृषि आधारित शिल्प और औद्योगों के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण किया। इनका उदाहरण है मिश्री और गुड़, कपड़ा, नमक, खाद्य तेल, लोहे के औजार आदि। प्रारंभिक मध्ययूगीन अर्थव्यवस्था की गतिशीलता की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए बहुत अधिक प्रयास की आवश्यकता है, लेकिन जो ज्ञात है वह अपरिवर्तित पूर्व या मध्ययुगीन ठहराव की अड़ियल छवि को दूर करने के लिए पर्याप्त है। समाज महत्वपूर्ण परिवर्तनों से गुजर रहा था। गुप्त काल के बाद की अवधि ने महिलाओं की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव

डाला (इकाई 11)। महिलाओं को पूरे समाज में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा। एक आदर्श महिला को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में माना जाता था जो पवित्र, वफादार और अपने स्त्रीधर्म और पतिव्रतधर्म का पालन करे। वह अपने पति के लिए पूर्ण रूप से समर्पित थी, एक संगमन का अभ्यास करती थी, भले ही उसके पति ने कई पत्नियों को रखा हो या वेश्या से संबंध रखता हो। संबंधित अवधि पितृसत्तात्मक थी और पुरूषों की तुलना में महिलाओं पर शुद्धता, पवित्रता और वफादारी के मापदंड लागू होते थे। धार्मिक परिवर्तन, जो पहले की अवधि में आकार ले रहे थे अब विभिन्न रूपों में दृष्टिगोचर हो रहे थे। रूढ़िवादी ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने वैदिक बलिदानों और वेद विद्या की परपंरा को जारी रखा। इस व्यवस्था के लिए व्यापक पैमाने पर भूमि अनुदान दिया गया था, और इसमे वैष्णव और शिव पंथ शामिल थे। विभिन्न समूह, साथ में धार्मिक अनुष्ठानों और विश्वासों की एक विस्तृत विविधता का अभ्यास करते थे जिसे इतिहासकारों ने पुराणिक हिंदु धर्म की संज्ञा दी है। धीरे–धीरे तंत्रवाद सभी प्रमुख धार्मिक परंपराओं में व्याप्त हो गया।

खंड IV भाषा और साहित्य; कला और वास्तुकला; विज्ञान और तकनीक; अर्थव्यवस्था और व्यापार; पर्यावरण, वन और जल संसाधन को 200 बी.सी.ई. से 800 सी.ई. के बीच की अवधि में व्यापक रूप से संबोधित करेगा। इकाई 14 भारत में पनपने वाली भाषा और साहित्य के महत्वपूर्ण पहलुओं की चर्चा करेगी। जैसे कि वैदिक ग्रन्थ संस्कृत भाषा के शुरूआती नमूने है, वैसे ही तमिल कविताएं, जिन्हें सामूहिक रूप से संगम के रूप में जाना जाता है और कुछ छोटे शिलालेख द्रविड़ भाषाओं के शुरूआती नमूने है। कला

शैलियों में परिवर्तन व स्थापत्य कला के उद्भव अभी भी अध्ययन का एक अन्य महत्वपूर्ण विषय है (इकाई 15)। स्तूपों और विहारों को समाज में विभिन्न समूहों द्वारा विस्तारित संरक्षण प्राप्त हुआ। मध्य एशिया और हेलेनिस्टिक दुनिया जैसे अन्य क्षेत्रों की कला का प्रभाव भारतीय कला पर देखा जा सकता है। गुप्त काल में मंदिर वास्तुकला के विकास में तेजी आई और इस अवधि में मंदिर वास्तुकला की विभिन्न शैलियों का उद्भव हुआः नागर, द्रविड़ और वेसर। विश्व के विभिन्न हिस्सों के विकास के साथ परिचित होने से ज्ञान को खगोल विज्ञान, गणित और विज्ञान (इकाई 16) पर लागू किया गया। पश्चिमी एशिया के साथ संचार के कारण खगोल विज्ञान, ज्योतिष ज्ञान का आदान प्रदान हुआ और एलेक्जेंड्रिया के कुछ ग्रंथों, जैसे कि *स्फुजिध्वाजा* का ग्रीक से संस्कृत में अनुवाद हुआ। इकाई 17 इस हजार वर्षों की अवधि में अर्थव्यवस्था और व्यापार के व्यापक रूझानों पर चर्चा करती है। मौर्य काल के बाद के व्यापार में तेजी से लेकर गुप्त और गुप्तोत्तर काल में सामंतवाद तक, अर्थव्यवस्था में परिवर्तन और वे किस प्रकार सामाजिक व्यवस्था से संबंधित थे, इन सब पहलुओं पर इस इकाई में चर्चा की जाएगी। अंतिम इकाई (18) मौर्यों के बाद के काल में जल संसाधन, वन और पर्यावरण का अध्ययन करती है। जिस तरह वनों को स्त्रोतों में समझा गया है, और जिस तरह प्रारंभिक भारत में नदियों और अन्य जल संसाधन महत्वपूर्ण हो गए थे, इसका परिचय दिया गया है। मानव और प्रकृति के बीच घनिष्ठ सहजीवन प्रारंभिक भारत में महत्वपूर्ण था और इसने पर्यावरण के संरक्षण में प्रमुख भूमिका निभाई।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 1 भारत : 200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. तक

इकाई 1 शुंग और कुषाण

इकाई 2 क्षेत्रीय शक्तियों का उदय

इकाई 3 दक्कन और *तमिलाहम्* में आरंभिक राज्य निर्माण

इकाई 4 कृषि बस्तियाँ और कृषि समाज : प्रायद्वीपीय भारत

इकाई 5 व्यापार संजाल **(Networks)** और शहरीकरण

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 शुंग और कुषाण[1]

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 उत्तर–पश्चिम भारत का उभरता महत्व

1.3 स्रोत

1.4 शुंग

1.4.1 शुंगों का क्षेत्रीय नियंत्रण

1.4.2 प्रशासनिक संरचना

1.4.3 शुंग कला

1.5 इंडो–ग्रीक

1.6 इंडो–सिथियन और इंडो–पार्थियन

1.7 कुषाण

1.7.1 प्रारंभिक दिन

1.7.2 प्रादेशिक विस्तार

1.7.3 कनिष्क के उत्तराधिकारी

[1]प्रो. सुचंद्रा घोष, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकता।

1.7.4 कुषाणों की धार्मिक नीति

1.7.5 कुषाणों के राजवंशीय अभ्यारण्य

1.8 भारतीय समाज में नए तत्व

1.9 गैर–राजतंत्रीय शक्तियां

1.10 सारांश

1.11 शब्दावली

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.13 संदर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप जान सकेंगेः

- भारत में मौर्य काल के अन्त से लगभग 300 सी.ई तक की राजनीतिक घटनाएं;
- भारतीय समाज की मुख्यधारा में विविध विदेशी तत्वों की अस्मिता; तथा
- 200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. के बीच उत्तर–पश्चिम और उत्तर भारत को नियंत्रित करने आए शासकों का धार्मिक झुकाव।

1.1 प्रस्तावना

187 बी.सी.ई. में मौर्य शासन के पतन ने भारतीय उपमहाद्वीप में कई शक्तियों के उदय का मार्ग प्रशस्त किया। मौर्यों के पतन से लेकर गुप्तों के उदय (द्वितीय शताब्दी बी.सी. ई. से तीसरी शताब्दी सी.ई. तक) तक के इतिहास को भारतीय इतिहास में मौर्य काल के बाद के काल के रूप में जाना जाता है।मौर्य साम्राज्य ने कई क्षेत्रों में बदलाव की महत्वपूर्ण प्रक्रिया शुरू की थी। परिवर्तन की ये प्रक्रियाएँ मौर्य काल के बाद में और अधिक परिपक्व हुई तथा राजशाही राज्य प्रणाली का शुभारम्भ हुआ। यद्यपि यह काल मौर्यों की तरह एक बड़े साम्राज्य का साक्षी नहीं था, लेकिन यह ऐतिहासिक रूप से मध्य एशिया के साथ सांस्कृतिक संपर्क के रूप में महत्वपूर्ण था। भारतीय समाज में विदेशी तत्वों का आत्मसात इस काल में व्यापक रूप से हुआ। उत्तर और उत्तर–पश्चिमी भारत में कई क्षेत्रीय शक्तियाँ उभरीं।

1.2 उत्तर–पश्चिम भारत का उभरता महत्व

उत्तर पश्चिमी भारत हमेशा एक ऐसा क्षेत्र रहा है जिसकाईरान, अफगानिस्तान और मध्य एशिया से सक्रिय संपर्क था। मौर्य काल के बाद मध्य एशिया में जनसंख्या संचलन का सीधा असर उत्तर और उत्तर पश्चिमी भारत की राजनीतिक स्थिति पर पड़ा, विशेषकर ऊपरी गंगा और यमुना के पश्चिमी क्षेत्रो में। दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. के मध्य से, मध्य एशिया के क्षेत्र और कैस्पियन सागर और चीन के बीच के क्षेत्र में विभिन्न घुमंतू जनजातियाँ आपसीसंघर्ष में उलझी हुयी थी। इन घुमंतू जनजातियाँ ने

जिन्हें सीथियन, शक, हुण, तुर्क आदि के नाम से जाना जाता था, चीन के द्वार बंद होते ही नई चारागाह भूमि की तलाश में मैदानी क्षेत्रों से पलायन शुरू कर दिया था।

इससे पहले अकमेनीद का भारत पर आक्रमण ने एवं सिकंदर की मुहिम से भारत के उत्तर पश्चिम क्षेत्रों में आक्रांताओं के लिए मार्ग खोल दिया। इस प्रकार जल्द ही सिलसिलेवार क्रम में सीथियन(शक) एवं पार्थियन(पहलव)के पश्चात ग्रीक या यवन (जैसा कि वे भारत में जाने जाते थे) भारत में आए। इसके बाद यूह–ची जनजाति की एक शाखा – कुषाणों का आगमन हुआ। आक्रांताओं की आवाजाही रूकी नही और बाद में भी उत्तर पश्चिम के फ्रंटियर क्षेत्रों में इनका आना बदस्तूर जारी रहा।

भारत–ईरानी सीमा के भूभौतिकीय विशेषताओं की वजह से एक तरफ पश्चिम और मध्य एशिया के साथ अच्छे संबंध बने रहे वहीं दूसरी ओर हिंदूकुश के दक्षिण में स्थित क्षेत्रों के साथ भी सम्बंधों में सुधार हुए। अशोक का द्विभाषी शिलालेख (ग्रीक और अरमी में) कंधार में मिला है। यह मौर्य काल के दौरान यूनान के केंद्रों और बाहरी बस्तियों के बीच परस्पर सम्पर्क को इंगित करता है। अशोक के द्वारा अपने साम्राज्य में 'योनस' का जिक्र (यवन, उत्तर पश्चिम सीमा क्षेत्र के लोग जहाँ अरमी एवं ग्रीक भाषा में शिलालेख जारी किए गयें) तथा पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफ्रीका और ग्रीस के पाँच यवन शासकों का जिक्र व भारत तथा हेलेनिस्टिक दुनिया के बीच संचार, वाणिज्य का सूचक हैं। भारत और पश्चिम के क्षेत्रों के साथ इस तरह के व्यापक और अंतरंग संपर्क मौर्योत्तर काल में अधिक विकसित हुए। हालाँकि, पूर्व, मध्य भारत और दक्कन में,

मौर्यों के पश्चात शुंग, कण्व और सातवाहनों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया था। आगेकुछ प्रमुख राजवंशों जैसे शुंग, इंडो–ग्रीक, शक, पार्थियन और कुषाणों के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाएगी।

1.3 स्रोत

इस अवधि के अध्ययन के लिए हमारे स्रोत पतंजलि के *महाभाष्य, दिव्यावदान, पुराण,* कालिदास के *मालविकाग्निमित्र,* बाणभट्ट के *हर्षचरित,* कुछ शिलालेख, ऐतिहासिक कला सामग्री आदि हैं। कुछ क्षेत्रों के लिए राजवंशों और शासकों की पौराणिक सूचियाँ महत्वपूर्ण हैं तो कुछ मामलों में शिलालेख आदि जानकारी के प्रमुख स्त्रोत हैं। *गार्गी संहिता* में कुछ जानकारी मौजूद है तथा अयोध्या, विदिशा और भारहुत से प्राप्त शिलालेखों से भी जानकारियाँ मिली है।

उत्तर भारत में छोटे–छोटे शासक परिवारों का उदय एक महत्वपूर्ण विकास का परिचायक था। उनके बारे में जानकारी उनके द्वारा निर्मित सिक्कों से प्राप्त होती है। इन सिक्कों पर उस समय के शासकों के नाम अंकित हैं और इस प्रकार सिक्के भी जानकारी के एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। हालांकि इस अवधि केराजनीतिक इतिहास की पुष्टिमध्य एशिया के स्रोतों से होती है। खरोष्ठी लिपि में लिखे शिलालेख गांधार में बड़ी संख्या में पाए गए हैं और मध्य एशिया से कई खरोष्ठी दस्तावेज बरामद किए गए हैं। इसके अलावा, ग्रीक और लैटिन स्रोत उत्तर पश्चिमी भारत और उसके शासकों के क्षेत्रों को संदर्भित करते हैं। पाली ग्रन्थ*मिलिंदा–पन्हा* (मिलिंद के प्रश्न) से इस अवधि के

यवन राजा मिनंडर और बौद्ध धर्म के बारे में जानकारी मिली है। चीनी ऐतिहासिक वृतान्तों में मध्य एशिया, बैक्ट्रिया और उत्तर–पश्चिम भारत की घटनाओं के संदर्भ हैं। उदाहरण के लिए, चीन के आरंभिक हान और बाद में हान राजवंशों के वृतान्तों से यूह–ची या कुषाणों के प्रारंभिक इतिहास की पर्याप्त जानकारी प्राप्त हुई है ।

1.4 शुंग

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, मौर्य के अंतिम राजा बृहद्रथ की हत्या 180 बी. सी.ई. में पुष्यमित्र शुंग ने की थी। इसकी सम्पुष्टि कन्नौज के हर्षवर्धन के दरबारी कवि, बाण (बाणभट्ट) द्वारा की गई है।शुंग ब्राह्मण थे और वैदिक ग्रंथों में शुंग शिक्षकों के कई संदर्भ हैं। *बृहदारण्यकउपनिषद* में सुंगिपुत्र नाम के एक शिक्षक का उल्लेख है। पाणिनि से हमें पता चलता है कि शुंग भारद्वाज गोत्र के थे। कालिदास के *मालविकाग्निमित्र* में पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र का वर्णन है, जिसे बिम्बिका कुल से संबंधित माना गया है।*बौधायन श्रोत सूत्र,* बैम्बिकायह का प्रतिनिधित्व काश्यप के रूप में करता है। परस्पर विरोधी कथनों के मद्देनजर, यह कहना मुश्किल है कि पुष्यमित्र भारद्वाज गोत्र का शुंग था या कश्यप वंश का बिम्बिका। हालाँकि, इन सभी स्रोतों से संकेत मिलता है कि शुंग ब्राह्मण थे। इसके अलावा *हर्षचरित* जैसे ग्रंथ में भी पुष्यमित्र को ब्राह्मण बताया गया है जो एक साधारण मनुष्य था।

पुराणों के अनुसार भारत में शुंग शासन 112 वर्षों तक चला। मगध शुंग राज्य का केन्द्र था। पुष्यमित्र द्वारा मौर्य सिंहासन पर अधिकार का उल्लेख *पुराणों* और बाणभट्ट की

हर्षचरित में है। *पुराणों* के अनुसार, पुष्यमित्र ने 36 वर्षों तक शासन किया और 151 बी. सी.ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उसका उत्तराधिकारी उसी का पुत्रअग्निमित्र था; उसके बाद उसका पुत्र वासुमित्र शासक बना। पुराणों में दस शुंग शासकों का उल्लेख है। पुष्यमित्र, अग्निमित्र, वासुमित्र और धनदेव को छोड़कर, अन्य शासकों के बारे में पुष्ट जानकारी या उसका स्त्रोत नहीं है। पुष्यमित्र शुंग को यवनों (बैक्ट्रियन ग्रीक) के साथ मुठभेड़ के लिए भी जाना जाता है। पतंजलि की *महाभाष्य* (III.2.111) के अनुसार, शुंगों के शासन के दौरान ग्रीक आक्रमण हुए जिसका जिक्र *युगपुराण* में भी किया गया है। यूनानियों ने साकेत (उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले में अयोध्या के पास) और मध्यमिका (राजस्थान में चित्तौड़ के निकट नगरी) का घेराव किया। यह *'अरुनाद यवनो साकेतम, अरुनाड यवनो मध्यमिकाम'* वाक्यांश से स्पष्ट है। पतंजलि यह भी इंगित करते हैं कि यवन मध्यदेश के बाहर रहते थे जो कि आदर्श के पूर्व में स्थित था। *महाभाष्य* की तिथि 150 बी.सी.ई. मानी जातीहै।कालीदास के नाटक *मालविकाग्निमित्रम* में पुष्यमित्र शुंग के पौत्र वासुमित्र के हाथों यवनों की हार की स्मृति संरक्षित है। नाटक के अनुसार, पुष्यमित्र (पुष्यमित्र) ने अपने पौत्र वासुमित्र (अग्निमित्र के पुत्र) को अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की सुरक्षा की जिम्मेदारी दी थी। वासुमित्र ने सिंधु नदी के तट पर यवनों को हराया। वासुमित्र के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के साथ विजयी होकर लौटने पर यज्ञ अनुष्ठान सम्पन्न कराया गया था। यह निश्चित नहीं है कि बैक्ट्रियन ग्रीक सेना का नेता कौन था। मिनेंडर डेमेट्रियस और यूक्रैटाइड्स को संभावित नेता माना गया है।

अशोक के *धम्म* और बौद्ध धर्म के साथ जुडने के पश्चातशुंगों नेरूढ़िवादी ब्राह्मणधर्म को अपनाया। धनदेव के अयोध्या शिलालेख में, पुष्यमित्र शुंग को दो अश्वमेध यज्ञ कराने का श्रेय दिया गया है। बौद्ध सूत्रों का दावा है कि उसने बौद्धों को बहुत सताया था। *दिव्यवदान* में विशेष रूप से दर्शाया गया है कि पुष्यमित्रने अशोक द्वारा निर्मित बौद्ध मठों और पूजा स्थलों को नष्ट करवाने का काम किया था। उदाहरण देते हुए यह कहा गया है कि उसने पाटलिपुत्र के कुकुता आराम मठ को नष्ट करने का प्रयास किया था। सूत्रों के अनुसार उसने हर साधु के सिर के लिए 100 दीनार का पुरस्कार भी तय किया था। हालाँकि *दिव्यवदान* का यह लेख अत्यधिक अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है। यदि इस अवधि में स्तूप और अन्य बौद्ध स्मारकों का नवीकरण कराने का उल्लेख है, तो यह विश्वास करना मुश्किल है कि शुंगों ने बौद्धों के खिलाफ काम किया होगा।

इस अवधि की एक और विशेषता यह थी कि राजाओं ने अपने को भव्य एवं अलंकृत विभुषण उपाधियों से सुशोभित किया। यह प्रचलन मौर्य काल के शासन के विपरीत है क्योंकि अशोक खुद को केवल *राजा* कहलवाना पसंद करता था। इस अवधि मेंहम *महाराजा, राजराजा, राजति राजा, शाओनानोशाओ* आदि उपाधियों के धारण का उल्लेख पाते हैं। वैदिक यज्ञों जैसे कि *अश्वमेध, राजसूय* आदि के आयोजन का उल्लेख मिलता है जो शाही शक्ति को बढ़ाने के उद्देश्य से किए जाते थे। इस काल के सैद्धांतिक ग्रंथ राजा की दिव्य अस्तित्व या दिव्य उत्पत्ति की अवधारणा को दर्शाते हैं। *मनुस्मृति* बताती है कि प्रजापति (निर्माता) ने इंद्र, वरुण, वायु, यम, अग्नि, आदि जैसे दिव्य तत्वों के संयोजन से राजा का निर्माण किया।*रामायण* में भी राजा को इसी रूप

में प्रस्तुत किया गया है। राजा के आदेशों का न केवल हमेशा पालन किया जाना चाहिए बल्कि उन्हे श्रद्धेय(*मनयस च पूज्यश्चे नित्यदा*)माना जाता था। इस प्रकार राजा को देवता के समतुल्य समझना उस समय की राजनीति का प्रमुख अंग है।

देवभूति अंतिम शुंग राजा था। देवभूति की हत्या उसी के ब्राह्मण मंत्री वासुदेव ने कर दी थी। इस प्रकार शुंग वंश 75 बी.सी.ई. में खत्म हो गया। शुंग वंश के बाद कण्व आए जिसके संस्थापक वासुदेव थे।

1.4.1 शुंगों का क्षेत्रीय नियंत्रण

शुंगों के शासन का केंद्र स्थल पाटलिपुत्र था। उन्होंने मध्य गंगा मैदान, ऊपरी गंगा घाटी और पूर्वी मालवा के प्रदेशों को भी अपने राज्य के अधीन कर लिया था। *दिव्यवदान* और तारानाथ के लेखों के अनुसार उसके साम्राज्य में पंजाब के जालंधर और सकाल भी शामिल थे। पहली शताब्दी बी.सी.ई. में भारहुत के दो प्राकृत शिलालेख हैंजिसमें स्पष्ट रूप से 'सुगा'(*सुगानम राजे*) के शासन का उल्लेख है जिसका अर्थ है शुंग वंश। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ दूर स्थित क्षेत्र के राज्य शायद उनके सीधे नियंत्रण में नहीं थे और वे राजा के प्रति केवल राजनिष्ठा रखते थे।

1.4.2 प्रशासनिक संरचना

शुंग साम्राज्य का संगठन अपने 112 वर्षों की लंबी अवधि के दौरान कभी भी एकसमान नहीं रहा। केंद्र के शासक की शक्ति और क्षमता व साम्राज्य के विस्तार के अनुसार

साम्राज्य में काफी विविधताएँ थीं। पुष्यमित्र का पाटलिपुत्र में केंद्रीय प्रशासन था तथा उसे मंत्रियों और नौकरशाहों की एक परिषद द्वारा आवश्यक प्रशासनिक सहायता प्रदान की जाती थी। प्रशासनिक दृष्टिकोण से पूरे साम्राज्य को विभिन्न प्रांतों में विभाजित किया गया था तथा हर प्रांत में एक राज्यपाल नियुक्त किया जाता था जो शाही परिवार का सदस्य होता था। राज्यपाल की सहायता के लिए एक परिषद का भी गठन किया गया था। इस दौरान स्वायत्त सत्ता वाले कुछ आदिवासी क्षेत्रों को भी राज्य प्रशासन में शामिल किया गया था। पतंजलि में उल्लेख है कि पुष्यमित्र ने जिस सभा का गठन किया था, वह संभवतः मंत्रिपरिषद या सभा के रूप में कार्य करती थी। *मालविकाग्निमित्रम* में कहा गया है कि विदिशा के वायसराय अग्निमित्र को मंत्रिपरिषद की सहायता नियमित रूप से प्रदान की जाती थी। इस बात के भी सबूत हैं कि शाही खानदान के राजकुमारों को या तो गवर्नर या कमांडर–इन–चीफ नियुक्त किया जाता था। पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र गवर्नर था। धनदेव के अयोध्या शिलालेख से साबित होता है कि उसके पूर्वजों में एक कोसल का गवर्नर था जिसका पुष्यमित्र से रक्त संबंध था। पुष्यमित्र के पौत्र वासुमित्र, शुंग सेना का प्रधान सेनापति था।

कालीदास और पतंजलि ने एक मंत्रिपरिषद का उल्लेख किया है जो सरकारी तंत्र का एक महत्वपूर्ण तत्व रहा होगा। यहां तक कि राजकुमारों को भी परिषद से प्रशासन सम्बंधी आवश्यक सहायता प्रदान की जाती थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि पुष्यमित्र के निधन के बाद, शुंग साम्राज्य कमजोर हो गया। उसके उत्तराधिकारियों ने कुछ समय के लिए विदिशा क्षेत्र में शासन किया था। कालिदास के नाटक *मालविकाग्निमित्रम* में, अग्निमित्र को विदिशा (भोपाल, मध्य प्रदेश) में वाइसराय के रूप में चित्रित किया गया है। यह नाटक विदर्भ (पूर्वी महाराष्ट्र क्षेत्र) के राजा पुष्यमित्र और यज्ञसेन के बीच संघर्ष को भी संदर्भित करता हैजिसमें शुंगों की जीत हुई थी। नाटक में आगे कहा गया है कि वासुमित्र (पुष्यमित्र का पौत्र) ने सिंधु नदी के दक्षिण में स्थित क्षेत्र (मध्य प्रदेश में कालीसिंध नदी या सिंधु) के एक यवन राजा को हराया था। हालाँकि पुष्यमित्र के परिवार के कुछ सदस्यों ने कोसल क्षेत्र (उत्तर प्रदेश) में भी शासन किया हो सकता है। धनदेव के अयोध्या शिलालेख में उन्हें सेनापति पुष्यमित्र के वंश में छठे सदस्य के रूपमें उद्धृत किया गया है। पुष्यमित्र द्वारा दो अश्वमेध यज्ञ कराने सम्बंधी उल्लेख हैजो उसकी सैन्य सफलता का परिचायक है। यह पत्थर या धातु पर पहला शिलालेख है जिसमें पुष्यमित्र के नाम का उल्लेख है। उन्हें पहले केवल साहित्यिक स्रोतों से जाना जाता था।

कण्वने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत शुंगों के अधीनस्थों के रूप में की थी।*पुराण* में इन्हें शुंगभृत्त(शुंग के नौकर) नाम से उल्लेख किया गया है। इन्होंने शुंग साम्राज्य का अंत कर अपना साम्राज्य स्थापित किया। *पुराणों* के अनुसार देवभूति या देवभूमि शुंग वंश का अंतिम शासक था।बाण (बाण्भट्ट) के अनुसार वह अपने ब्राह्मण मंत्री वासुदेव की साजिश का शिकार हुआ। उसे एक गुलाम लड़की जो रानी की आड़

में उससे संपर्क करती थी, ने छल से मारा। कुल मिलाकर, दस शुंग राजाओं ने 112 वर्षों(बी.सी.ई. 187 से 75 सी.ई.) तक शासन किया।

1.4.3 शुंग कला

शुंग साम्राज्य ने कला को संरक्षण देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारहुत, बोधगया और सांची शुंग शासकों से प्राप्त संरक्षण के प्रमाण हैं। भारहुत स्तूप के द्वार और रेलिंग तथा सांची स्तूप को घेरने वाले बेहतरीन प्रवेश द्वार की रेलिंग का निर्माण शुंग काल के दौरान हुआ था। बौद्ध मठों का अभूतपूर्व विस्तार दूसरी शताब्दीबी.सी.ई. में हुआ। इस अवधि में पक्की मिट्टी से बनी लघु मूर्तियाँ, पत्थर की बड़ी मूर्तियां और भाजा के चैत्य हॉल, भारहुत का स्तूप और सांची के महान स्तूप का निर्माण आदि शुंग कला के बेहतरीन उदाहरण हैं।

चित्रः उत्तरी तोरण (द्वार) (शुंगकाल) सांचीस्तूप 1 **श्रेयः** आर्नोल्डबेटैन। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स.(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Sanchi_Stupa_1_Nord-Torana_(1999).JPG)

शुंग कला की विशिष्ट खासियत इसकी एकरूपता है जो जीवन की एक सतत् धारा में सभी पृथक वस्तुओं को बांधती प्रतीत होती है। विशाल पत्थर से बने स्तूप के मुंडेर पर कमल के डंठल के चित्र हैं जो इसकी भव्यता को प्रवाहमयी बनाती है।भारहुत, बोधगया और सांची स्तूप में वनस्पतिक दुनिया को नक्काशी द्वारा खुबसूरती से दर्शाया गया है। इसकी चमचमाती रेखीय प्रवाहमयी चित्रकारी द्वारापुरुषों और जानवरों को एक चित्र में समाहित कर इसे एकरूपता देने का सुंदर प्रयास किया गया है।

शुंग कलाकार मानव आकृतियों को बनाने में दिलचस्पी रखते थे। बुद्ध के जीवन और घटनाओं के प्रसंगों को उभरी नक्काशी के माध्यम से समकालीन जीवन पद्धति को प्रस्तुत किया गया हैं। भारहुत, बोधगया और सांची की कुछ मूर्तियां पहली संगठित कला गतिविधि का प्रतिनिधित्व करती हैं जो मौर्यों की दरबारी कला से विपरीत थी। यह पहली बार जातीय, सामाजिक, धार्मिकविलयन और एकीकरण के परिणामों को दर्शाता है। इस अवधि के दौरान महत्वपूर्ण धार्मिक घटनाक्रम भी हुए। पतंजलि का योग सम्बंधी परंपरा का संश्लेषण वैचारिक अध्ययन व अनुसंधान का नींव बना।

1.5 इंडो–ग्रीक

अलेक्जेंडर के शासन के तहत, ग्रीक बैक्ट्रिया में बस गए थे, एक ऐसा क्षेत्र जिसे वर्तमान अफगानिस्तान, उत्तरी दक्षिणी तुर्कमेनिस्तान और उज्बेकिस्तान के साथ पहचाना जा सकता है। अलेक्जेंडर की मृत्यु के बाद, उसके सेनापति ने राजकाज सम्भाला। ऐसा ही एक उदाहरण सेल्यूकस राजवंश था जिसकी सीमा मौर्यों के साम्राज्य की सीमा से मिलती थी। जल्द ही बैक्ट्रिया (लगभग 250 बी.सी.ई. में) सेल्यूकस साम्राज्य से अलग हो गया और बैक्ट्रियन ग्रीक ने हेलेनिज़्म के पूर्वी छोर पर अपने साम्राज्य की स्थापना की। सिथियन खानाबदोशों (प्राचीन सीथिया के निवासी) द्वारा बैक्ट्रिया निवासियों को बैक्ट्रियासे भगा दिया गया। 145 और 130 बी.सी.ई. के बीच ग्रीकों को बहिष्कृत किया गया था और बैक्ट्रियन ग्रीकदक्षिण की ओर गए जहाँ से उन्होंने हिंदुकुश से गांधार तक फैले दक्षिणी अफगानिस्तान (आराकोषिया) को अपने नियंत्रण में

लिया। यहीं से इंडो ग्रीक के इतिहास की शुरूआत होती है। (इसके बारे में चर्चा इकाई2 में)।

1.6 इंडो–सिथियन और इंडो पार्थियन

इंडो–सिथियन को शक के नाम से भी जाना जाता है। वे बैक्ट्रिया से दक्षिण एशिया तक पहुंचने वाले पहले बड़े घुमंतू समुदाय थे। इंडो–सिथियन के इतिहास का सिक्कों के आधार पर बड़े पैमाने पर पुनर्निर्माणकिया गया हैक्योंकि उस समय तक शासकों के नाम उनके सिक्कों पर अंकित किए गए थे। सिथियन एक सामान्य शब्द है जो लोगों के एक समूह को संदर्भित करता है, जिन्होंने मध्य एशिया में उत्पन्न होकर दक्षिण और पश्चिम की ओर पलायन किया। सिथियनकुल में एक वोनोन्स और उसका सहयोगी था जो अफगानिस्तान के रास्ते भारत पहुंचा; दूसरा माउज़ था, जिसने पामीर को पार कर भारत में प्रवेश किया। हालाँकि, पहली शताब्दी बी.सी.ई. के मध्य में वोनोन्स समूह का सह–शासक एज़ेस एकमात्र शासक था जिसने भारत में सिथियन शासन का विस्तार किया। उसने *'राजाओं के राजा'* शीर्षक से सिक्के जारी किए। उत्तर–पश्चिम भारत का बड़ा हिस्सा एज़ेस I के शासन के दौरान संगठित हो गया था तथा सिक्कों का विशाल उत्पादन साम्राज्य के धन में काफी वृद्धि होने का सूचक है। वह भारतीय उपमहाद्वीप के गोमल दर्रे और गोमल, तोची और कुर्रम नदियों के मैदानी रास्ते से भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिमी भाग तक पहुँचा। 58/57 बी.सी.ई. में उसने अपने नाम से एक संवत कल्प की शुरूआत की। उसके अभिलेख इसी (*द ग्रेट किंग एज़स*) संवत में तिथिबद्ध हैं। इसे पहले विक्रम सम्वत के नाम से भी जाना जाता

थाकिंतु अब यह इंडो सिथियन राजा एज़ेस I के युग के आरम्भ के रूप में जाना जाता है। एज़ेस I का सहयोगी शासक एजिलिसस था जो बाद में सर्वोच्च शासक के रूप में उसका उत्तराधिकारी बना। एजिलिसस ने एज़ीज़ प्रथम द्वारा आराकोषिया समेत कब्जा किए गए सभी क्षेत्रों को एकजुट बनाए रखा। उसने बड़ी संख्या में सिक्के भी जारी किए जो उत्तर–पश्चिम भारत के क्षेत्रों पर उनके नियंत्रण का सूचक है। अपने पूर्ववर्ती राजा के राज्य को मजबूत करने के साथ उसने अपने साम्राज्य का विस्तार मथुरा तक किया था। पहली शताब्दी सी.ई. की पहली तिमाही मे उसका सहयोगी एज़ेस II राज्य का उत्तराधिकारी बना। हालाँकि उसके शासन में राज्य की क्षेत्रीय सीमा में संकुचन (कमी) देखा गया। उसके द्वारा जारी किए गए सिक्कों से पता चलता है कि वह सिंधु के पश्चिम और पूर्व दोनों के क्षेत्रों में शासन करता रहा। सिंधु के पश्चिम में इस क्षेत्र में हमारे पास उनके सिक्कों के पीछे स्ट्रैटेगोस (जनरल) अस्पवर्मन का नाम अंकित है। इसका तात्पर्य है कि उस समय जनरल और राजा मिलकर अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करते थे। हमारे पास मथुरा में उनके शासन का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इंडो – सीथियन साम्राज्य के राजाओं ने उत्तर–पश्चिम भारत में स्थानीय–राजवंशों को सम्मान देते हुए तब तक शासन किया जब तक इंडो पार्थियन साम्राज्य के संस्थापक गोंडोफेर्स ने उसे सत्ता से बेदखल नहीं कर दिया।

इंडो–पार्थियन या पहलवाओं ने इंडो–ईरानी बॉर्डरलैंड में इंडो–सिथियन के पश्चात् साम्राज्य की स्थापना की। इस साम्राज्य का पहला शासक गोंडोफेर्स था, जिसका राज्य सिस्तान से लेकर अराकोषिया, काबुल घाटी तक और गांधार से लेकर जम्मू–पठानकोट

क्षेत्र तक फैला हुआ था। उसके सिक्कों को चार प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया गया है। गोंडोफ़ेर्स का शासन 20 सी.ई. से 45 सी.ई. तक चला। इंडो–पार्थियन राज्य काफी बड़ा था और इस राज्य में भौगोलिक विविधताएं थीं। राज्य को एक साथ रखने के लिए, गोंडोफेर्स ने संभवतः क्षत्रपों को स्वायत्तत बना दिया था। उसने शक्तिशाली ताकतों का साथ दिया और उन्हें अपने प्रभाव क्षेत्र में शामिल किया। उसने सिस्तान से लेकर सतलज नदी तक अपने प्रभाव का विस्तार किया। उसने समावेशी नीति के तहत अन्य राज्यों पर विजय हासिल की तथा स्थानीय शासकों को स्वायत्ता प्रदान की। कुजुला कैडफिसेस के नेतृत्व में कुषाणों के एक बड़े आक्रमण के परिणामस्वरूप राज्य का पतन हो गया। गोंडोफ़ेर्स के सिक्कों पर कुजुला कैडफिसेस की छाप के चित्रण से संकेत मिलता है कि कुजुला ने परोपामिसादे (काबुल–बेगराम क्षेत्र) और गांधार में पार्थियन शासन का अंत किया।

बोध प्रश्न–1

1) निम्नलिखित कथनों को पढ़ें और सही (✓) या गलत (×) को चिह्नित करें।

(क) शुंग मौर्यों के तत्काल उत्तराधिकारी थे ()

(ख) पौराणिक वृतान्त 200 बी.सी.ई.– 300 सी.ई. के बीच की अवधि का महत्वपूर्ण स्रोत है। ()

(ग) हर्षचरित के लेखक कालीदास हैं ()

2) 100 शब्दों में अपना उत्तर लिखें।

(क) शुंग कौन थे? उनके शासन की रूपरेखा प्रस्तुत करें ।

_____

_____

_____

_____

_____

ख) 200 बी.सी.ई.– 300 सी.ई. के बीच इतिहास के पुनर्निर्माण के महत्वपूर्ण स्रोत क्या हैं?

_____

_____

_____

_____

_____

1.7 कुषाण

मौर्य काल के बाद कुषाण एक प्रमुख शासक समूह था। कुषाण घुमंतू समूह यूह–ची की एक शाखा थे जो दुनहुआंग के आसपास के इलाकों में बसे थे। ज्यांगन्यू के साथ

संघर्ष के कारण 165 बी.सी.ई. से 128 बी.सी.ई. के बीच तरीन घाटी से बैक्ट्रिया की ओर पलायन किया। वे उन पाँच कुलों में से एक थे, जिनमें यूह–ची जनजाति विभाजित थी।

उपमहाद्वीप के राजनीतिक इतिहास और इसके उत्तर–पश्चिमी सीमा क्षेत्र में कुषाण क्षेत्र का महत्व बहुत अधिक है। कुषाणों के आगमन के साथ, भारत–ईरानी सीमा में छोटे क्षेत्रीय राज्यों ने साम्राज्य निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया जो इन क्षेत्रों के राजनीतिक एकीकरण के माध्यम से हासिल किया गया था। इसने बैक्ट्रिया में कुषाण रियासत को एक बड़े साम्राज्य में बदल दिया, जिसमें उजबेकिस्तान, अफगानिस्तान, चीनी मध्य एशिया के कुछ हिस्से, उत्तर–पश्चिम सीमा के उपमहाद्वीप, मथुरा और मथुरा से परे बिहार के गंगा के मैदानी क्षेत्र से भागलपुर तक के कई क्षेत्र शामिल थे। इस वजह से, कुषाण साम्राज्य को कभी–कभी मध्य एशियाई साम्राज्य कहा जाता है।

गंगा घाटी तक कुषाण नियंत्रण की गवाही बैक्ट्रियन भाषा में लिखे कनिष्क प्रथम के अफगानिस्तान के पुली खुमरी क्षेत्र से खोजे गए रबातक शिलालेख से मिलती है। यद्यपि कुजुला कडफिसेस (कुषाण कबीले का प्रमुख) के प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी के रूप में वीमा टकटू का नाम पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है, रबातक शिलालेख इस बात की पुष्टि करता है कि कुजुला कडफिसेस के बाद ओर वीमा कडफिसेस (कनिष्क के पिता) से पहले एक और शासक विद्यमान था। वीमा टकटूको '*सोटर मोगास* (महान रक्षक) के साथ जोड़ा जा सकता है, वह कुषाण शासक जिसने सिक्कों की श्रृंखला जारी की, जो

कुजुला कडफिसेस के सिक्कों का अनुसरण करते हैं और वीमा कडफिसेस से पहले के है। पहली से तीसरी शताब्दी सी.ई. में कुषाण काल के दौरान, दक्षिण एशिया और मध्य एशिया के बीच राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संपर्क बहुत बढ़ गए। इसकी पुष्टी पुरातत्व खुदाई, कलाकृतियों, सिक्कों और शिलालेखों से होती है। ट्रान्सोक्सियाना और बैक्ट्रिया पर कनिष्क के शासन के दौरान कुषाण साम्राज्य ने रेशम मार्ग में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रेशम मार्ग ने चीन को बैक्ट्रिया से होते हुए पश्चिम एशिया और भूमध्य सागर के साथ जोड़ा। इसके अलावा कुषाण साम्राज्य का भारत के पश्चिमी तट के माध्यम से हिंद महासागर में भारत रोमन व्यापार के साथ सीधा संपर्क था।

मानचित्र 1.1 कुषाण साम्राज्य। साभारः उल्लेख नहीं. स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स. (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:KushanEmpireMap.jpg)

मानचित्र 1.1 के राज्यों के नामः ऊपर– बायीं ओर से : सोगडियाना, फरघना, कच्छ, तुर्फान, ,चीन, बैक्ट्रा, पामीर, बैक्ट्रिया, सुर्ख–कोटि, बेग्राम, हिंदुकुश, गांधार, तक्षशिला, हिमालय, आर्कोसिया, कुषाण साम्राज्य, गेडरोसिया, सिंधु, बरबरिकम, उज्जैन, मथुरा,

साकेत, पाटलिपुत्र, पश्चिमी क्षत्रप, विदिशा, चम्पा, कुंडिना, बरिगाजा, पुणे, प्रतिष्ठान, सातवाहन साम्राज्य, अमरावती, पांडियन साम्राज्य, चोल।

चित्र 1.1 कनिष्क का सोने का सिक्का। ब्रिटिश संग्रहालय। साभारः उल्लेख नहीं। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स.

(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:KanishkaCoin3.JPG)

चित्र 1.2 मट, मथुरा से कनिष्क की मूर्ति। साभारः बिस्वरुप गांगुली। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स.

1.7.1 प्रारंभिक दिन

पहला शासक कुजुला कडफिसेस था जिसने '*महान राजा*, '*राजाधिराज*'की उपाधि सिक्कों पर ग्रहण की जो शक और पार्थियन सिक्कों का अनुसरण करते थे। उसने यूह–ची की पांच जनजातियों को एकजुट किया और भारत में सफल घुसपैठ की। उन्होंने काबुल और कश्मीर में खुद को स्थापित किया।राबतक शिलालेख में, कुषाण वंश का तीसरा शासक विमा कडफिसेस था। शासक की निंबुखी आकृति ने उसे एक अतिमानव के रूप में चित्रित किया है तथा इसे बादलों से उभर के आते हुए बडे ही भव्य तरीके से दर्शाया गया है। यह राजा के दिव्य स्वरूप का स्पष्ट संकेतक है। बेशक राजकीय सत्ता के पास गुनाहगारों को दंडित करने का विशेषाधिकार था। विमा के दश्त–ए–नावूर शिलालेख में, कुषाण शासक को '*लॉ ऑफ़ लिविंग वर्ल्ड* [Dom (r) a-ata<D'm-arta] के रूप में वर्णित किया गया था। इस प्रकार राजा को कानून के दाता या ब्रह्मांडीय व्यवस्था के धारक के रूप में चित्रित किया गया था। कामरा शिलालेख में वशिष्क को देवमानुष के रूप में चित्रित किया गया था। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कनिष्क प्रथम के रबातक शिलालेख में उन्हें '*बागो*' (देवमानुष) '*यानी स्वयं ईश्वर*' बताया गया है। इस प्रकार कनिष्क को देवता के पुत्र से स्वयं देवता का दर्जा प्राप्त था।

1.7.2 प्रादेशिक विस्तार

कुषाण साम्राज्य का अधिकतम क्षेत्रीय विस्तार कनिष्क प्रथम के शासनकाल में हुआ। कनिष्क का पदारोहण 78 से 144 सी.ई. के बीच हुआ। 78 सी.ई. को शक सम्वत

कहा जाता है, किंतु कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार यह कनिष्क के पदग्रहण से जुड़ा हुआ है। रबातक बैक्ट्रियन शिलालेख के अनुसार, कनिष्क के समय का कुषाण राज्य साकेत, कौशांबी, पाटलिपुत्रऔर गंगा यमुना घाटी में श्री–चंपा शहरों तक विस्तृत था। मथुरा के पास कनिष्क की एक विशाल प्रतिमामिली है जिस पर ब्राह्मी लिपि में '*महान राजा, राजाओं के राजा, देवपुत्र, कनिष्क*लिखा है जिससे पता चलता है कि उसने चक्रवर्ती सम्राट के रूप में अपने को स्थापित किया है। जबकि इंडो–ग्रीक*बेसिलोस बेसीली* (राजाओं का राजा) उपाधि का इस्तेमाल करते थे। कुषाणों ने फारसियों, चीनी और रोमनों से खिताब लिया। उन्होंने '*महाराजाधिराज*' (राजाओं का राजा), '*दैवपुत्र*' (स्वर्ग का पुत्र), *सोतेर* (उद्धारकर्ता) और *कैसर* (सीजर) की उपाधि धारण की ।

उपमहाद्वीप का उत्तर–पश्चिमी सीमांत क्षेत्र निश्चित रूप से कनिष्क के नियंत्रण में था। शाह–जी–ढेरी रैलिक कास्केट शिलालेख में, पुरुषपुरा शहर (पाकिस्तान में पेशावर) का उल्लेख कनिष्कपुरा के नाम से है जो कुषाण सम्राट के नाम पर हैं। कुषाण सम्राट के शासन के बाद शहर का नामकरण कुषाण शासकों के नाम पर होने से पता चलता है कि यह दक्षित एशिया प्रांत में कनिष्क का प्रमुख राजनीतिक केंद्र था। यहाँ कनिष्क ने एक विशाल स्तूप बनवाया जो विदेशी यात्रियों के बीच आकर्षण का केंद्र था।

1.7.3 कनिष्क के उत्तराधिकारी

कनिष्क I के उत्तराधिकारियों में सबसे शक्तिशाली और प्रमुख हुविष्क था जिसने तीन दशकों से अधिक समय तक शासन किया। हुविष्क का सिक्का विशेष रूप से भिन्न है।

इसमें बड़ी संख्या में सोने और तांबे के सिक्के शामिल थे। उसके शासनकाल के कई शिलालेख मथुरा से प्राप्त हुए हैं। वर्दक से प्राप्त अभिलेख से स्पष्ट है कि काबुल के पश्चिम के क्षेत्रों पर उसका नियंत्रण था (साल 51)। हुविष्क ने भी सोने के सिक्कों की अधिकतम किस्में जारी कीं। उनके सिक्कों में इंडिक, ईरानी, मध्य एशियाई और हेलेनिस्टिक धर्मों की देवी–देवताओं को दर्शाया गया है।

आरा शिलालेख से हमे कनिष्क द्वितीय के बारे में पता चलता है। अगले शासक वासुदेव ने भी तीन दशक से अधिक लंबे शासनकाल (64/67 से 98 सी.ई.) का आनंद लिया। उनके अभिलेखों से पता चलता है कि मथुरा पर कुषाणों का नियंत्रण था। वासुदेव I के अन्य दो उत्तराधिकारियों कनिष्क तृतीय और वासुदेव द्वितीयके बारे में उनके द्वारा जारी सिक्कों से जानकारी मिलती है। वंश का अंतिम संभावित शासक वासुदेव द्वितीय था। वासुदेव द्वितीय के शासन के समय तक कुषाण साम्राज्य के क्षेत्र के आकार में कमी हुई। ईरान के सस्सानीद शासक शापुर प्रथम ने इस सम्राज्य का अंत किया।

कुषाण क्षेत्र में हम दो शासकों को एक साथ शासन करते पाते हैं – एक वरिष्ठ और एक कनिष्ठ शासक। वंशानुगत दोहरे शासन का यह रूप कुषाणों के अधीन एक निराली प्रथा थी। इस प्रकार प्रतीत होता है कि इन शासकों के अधीन केंद्रीयकरण कम था। कुषाणों ने शकों से अपनाई गई सरकार की क्षत्रप प्रणाली को मजबूत किया।

साम्राज्य को कई क्षत्रपों में विभाजित किया गया था। प्रत्येक क्षत्रप को एक क्षत्रप के शासन के अधीन रखा गया था।

1.7.4 कुषाणों की धार्मिक नीति

कुषाणों ने कई स्थानीय दिव्यताओं को कुषाण पन्थ में शामिल किया जिन्हें सिक्कों पर चित्रित किया गया था। रोसेनफील्ड ने ठीक ही उल्लेख किया है कि सिक्कों के उल्टे भाग पर व्यक्तिगत देवताओं का चित्रण राजा के सहयोगियों, दिव्य साथियों और राजतंत्र के समर्थकों के रूप में किया गया है। इससे पता चलता है कि सिक्के प्रचारिक प्रकार के थे। देवताओं की बहुलता को प्रदर्शित करना कनिष्क की स्थिति और उसकी महत्ता से जोड़ा गया है।

चित्र 1.3 वीमा कडफिसेस का सिक्का (110–20 सी.ई. के आसपास शासनकाल)। ब्रिटिश संग्रहालय। श्रेयः विकिमीडिया कॉमन्स. https://commons.wikimedia.org/wiki/File:WimaKadphises.JPG

चित्र 1.4 देव हिल्योस के साथ कनिष्क का सिक्का। ग्रीक भाषा की किंवदंतीः ओबवर्सः *बेसिलस बेसिलन कानिशोकी* (राजाओं के राजा, कनिष्क); रिवर्सः *ईलियस होलियोस*। (इंडो–यूनानियों के 'सिक्के' से, व्हाइटहेड, 1914 एड.) श्रेयः विकिमीडिया कॉमन्स। (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Coin_of_Kanishka_depicting_Helios.jpg)

ईरानी धार्मिक विचार कनिष्क के सिक्कों पर हावी थे जो उनकी बैक्ट्रियन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का परिणाम है। इसीलिए कनिष्क के अधिकांश सिक्कों मेंईरानी देवताओं को उल्टेभाग पर दिखाया गया है जिनके नामग्रीक–बैक्ट्रियन में उल्लखित हैं। रबातक शिलालेख से यह स्पष्ट है कि कुषाण जिन देवताओं की पूजा करते थे वे ईरानी मूल के थे और नाना प्रमुख देवता था। कनिष्क के सिक्कों पर बुद्ध को बोधो के रूप में दर्शाया गया है जो देवताओं की प्रदर्शित सूची में अतिरिक्त है। बुद्ध को सिक्के पर शिव, मित्र, अहुरमज़्दा आदि देवताओं की तरह चित्रित किया गया है। बुद्ध को देवताओं के समतुल्य रखा गया है जो उनके बुद्ध के प्रति निष्ठा का प्रतीक है। कनिष्क

के सिक्कों पर इस्तेमाल की गई बुद्ध की छवियों से पता चलता है कि उसके राज्य में बौद्ध धर्म एक प्रचलित पंथ/धर्म था।

चित्र 1.5 कुषाण देवत्व अडशो (कार्नेलियन सील)। ब्रिटिश संग्रहालय। श्रेयः विकिमीडिया कॉमन्स.https://commons.wikimedia.org/wiki/File:AdshoCarnelianSeal.jpg

कनिष्क का धार्मिक झुकाव बैक्ट्रियन पंथों पर आधारित था, वहीं हुविष्क ने अधिक नवीन धार्मिक रणनीतियों का पालन किया और ग्रीक, ब्राह्मणवादी, बौद्ध और पारसी देवताओं को सम्मान दिया तथा उनकी तस्वीरों को सिक्कों में ढाला। हुविष्क ने

अलेक्जेंड्रियन और रोमन देवताओं कोअंकित कर भारतीय व्यापार नेटवर्क से जुड़े रोमन व्यापारियों को खुश करने का प्रयास किए ।

चित्र 1.6 BOΔΔO (यानी बुद्ध) के साथ कनिष्क का सिक्का। साभारः सीएनजी सिक्के स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स. (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Coin_of_Kanishka_I.jpg)

चित्र 1.7 बुद्ध की छवि के साथ कनिष्क का सिक्का। साभारः बी.पी. मर्फी। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स.

https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Kanishka_Buddha_detail.jpg

स्मरणीय है कि कनिष्क प्रथम और हुविष्क के शासन के दौरान रेशम मार्ग से व्यापार अपने चरम पर था। यह कहा जा सकता है कि बहुसांस्कृतिक सिक्के और कुषाण शासकों के महानगरीय रवैये ने इस क्षेत्र से गुजरने वाले व्यापार को सुविधाजनक बनाया। स्कंद, कुमार, विशाखा और महासेना, हुविष्क के चार अलग–अलग देवता थे, जो बाद में एक देवता में विलीन हो गए, जिसे ब्राह्मण धर्म में कार्तिकेय के नाम से जाना जाने लगा।

कुषाणों के सिक्कों पर विभिन्न प्रकार के देवी–देवताओं का चित्रण, साम्राज्य में विभिन्न धार्मिक विश्वासों से संबंधित है। यह शासकों के बहुलवादी धार्मिक प्रथाओं को ओर बढ़ावा देने का इशारा है। यद्यपि ईरानी धर्म प्रमुख प्रतीत होता है किंतु किसी धर्म विशेष का वर्चस्व नहीं था।

1.7.5 कुषाणों केराजवंशीय अभयारण्य

देवत्व के लिए अपने दावों को पेश करने की एक प्रणाली के रूप में सिक्कों का उपयोग करने के अलावा, कुषाण शासकों ने राजवंशीय अभयारण्यों *बगोलंगो* या *बोगोपोरो* (बैक्ट्रियन में) या *देवकुल* (संस्कृत या प्राकृत शिलालेखों में) का भी निर्माण किया जो बाद में पूजा स्थल बन गये। वीमा कडफिसेस ने शाही पंथ के दो ऐसे केंद्रों का निर्माण शुरू किया, जिनमें से एक मथुरा के पास मट था तथा दूसरा सुर्ख कोटल में। कनिष्क ने सुर्ख कोटल में राजवंशीय अभयारण्य का निर्माण किया। अभयारण्य का नाम 'कनिष्क ओनिंदो–अभयारण्य' है। कुषाण राजवंशीय अभयारण्यों को खलचयन और एयरताम (उज्बेकिस्तान) से बरामद किया गया है। यह उनकी भगवान रूपी राजा की छवि है। उन्होंने सुर्खा कोटल और मट में मंदिरों का निर्माण कर उसमें राजाओं की तीन पीढ़ियों को स्थापित किया। कनिष्क प्रथम से संबंधित रबातक शिलालेख में नाना अभयारण्य (बैगो–लागगो) नामक एक अभयारण्य के निर्माण का भी उल्लेख है, जिसमें विभिन्न देवताओं के साथ–साथ कुषाण शासकों जैसे कि कुजुला कडफिसेस, वीमा तकतु, वीमा कडफिसेस और कनिष्क के चित्र भी हैं। गौरतलब है कि इस शिलालेख में

कनिष्क को *बैगो* कहा जाता है यानी 'स्वयं भगवान'। जैसा कि विद्वानों द्वारा सुझाव दिया गया है, राजाओं का देवत्वधान, तीर्थों में उनकी मूर्तियों को स्थापित करने, उनकी पूजा करने तथा मन्नत मांगने सम्बंधी प्रथा का प्रचलन था। सम्राट की धार्मिक पद्धतिने सम्राज्य में एकजुटता लाने का काम किया, जिसने जातीय और भाषाई समूहों, धार्मिक विश्वासों और सांस्कृतिक प्रथाओं की विशाल विविधता को समायोजित किया। उस समय विविध क्षेत्रीय विशेषताओं की स्वीकार्यता थी।

भारत–ईरानी सीमा और दोआब के बीच पारस्परिक सम्बंध तब और प्रगाढ़ हो गया जब प्रमुख शहरी केंद्रों के शासन को कुषाणों द्वारा एकीकृत किया गया। उत्तर–पश्चिम में तक्षशिला और दोआब में मथुरा व्यापार मार्ग पर स्थित थे जो गंगा क्षेत्र को उत्तर–पश्चिम और अंत में अफगानिस्तान से जोड़ते थे। इससे मथुरा की भौतिक संस्कृति में उत्तर–पश्चिम के लोगों की संस्कृति के तत्व दिखते हैं। इससे मथुरा में एक राजवंशीय अभयारण्य का निर्माण हुआ जो कुषाण सम्राटों का शाही प्रतीक था।इससे पता चलता है कि मथुरा के साथ उनका संबंध राजनैतिक नियंत्रण ही नहीं बल्कि कुछ और था।

1.8 भारतीय समाज में नए तत्व

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, मौर्य काल के बाद उत्तरपश्चिम सीमांत में लोगों का बड़े पैमाने पर संचलन हुआ। हालाँकि, यह सोचना गलत होगा कि इस अवधि में उत्तर और उत्तर–पश्चिम भारत विदेशी साम्राज्य के अधीन था। इस अवधि में विदेशी

और भारतीय के बीच का अंतर स्पष्ट नहीं था और कालांतर में यवन, शक आदि भारतीय उपमहाद्वीप की आबादी का हिस्सा बन गए। ग्रीक, शक, पार्थियन, कुषाण आदि का धीरे–धीरे भारतीयकरण हुआ। भारतीय संस्कृति के कानूनविद मनु के अनुसार, शक और पार्थियन क्षत्रिय थे जो अपने कर्तव्यों से विमुख हो गए थे। इस प्रकार, उन्हें द्वितीय श्रेणी के क्षत्रियों के रूप में माना जाने लगा। भारतीय इतिहास के किसी भी अन्य काल में इतनी बड़ी संख्या में विदेशी लोग भारतीय समाज में आत्मसात नहीं हुए, जितने मौर्योत्तर काल में हुए।

इनमें से अधिकांश शासकों का अपनी लिपि, लिखित भाषा या कोई संगठित धर्म नहीं था। वे भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग बन गए, जिसमें उन्होंने काफी योगदान दिया। उन्होंने बेहतर घुड़सवार विद्या की शुरूआत की और बड़े पैमाने परघोड़े का उपयोग शुरू किया। उन्होंने घोड़े के लगाम व जीन के उपयोग को लोकप्रिय बनाया जो दूसरी और तीसरी सी.ई. की बौद्ध मूर्तिकला में दिखाई देते हैं। अफगानिस्तान के बेग्राम से कुषाण घुड़सवारी के चित्र मिले हैं। शक और कुषाणों ने पगड़ी, अंगरखा, पतलून और भारी लंबे कोट पहनना का रिवाज शुरु किए। कैप, हेलमेट और बूट भी मध्य एशियाई योद्धाओं द्वारा पहने जाते थे। बाद में उनकी सैन्य तकनीक भारत में फैल गई।

1.9 गैर राजतंत्रीय शक्तियाँ

पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में अलग–अलग इलाके थे जहाँ छोटे–छोटे स्थानीय राज्यों पर या तो छोटे शाही परिवारों द्वारा शासन किया जा रहा था या फिर ऑडुबंर, यौधेय, मालव, शिबी, वृष्नी और कुनिंद जैसे प्रमुख वंशों के सदस्यों द्वारा। ऑडुबंर ने रावी और ब्यास के ऊपरी भागों के बीच की भूमि पर कब्जा कर लिया। कुनिंदों ने शिवालिक पर्वतमाला की तलहटी के साथ ब्यास और यमुना के ऊपरी तराई के क्षेत्रों पर शासन किया। त्रिगर्त ने रावी और सतलज नदियों के बीच स्थित समतल क्षेत्र पर शासन किया। यौधेय ने सतलज और यमुना के बीच के क्षेत्र और पूर्वी राजस्थान के कुछ हिस्सों पर शासन किया। अर्जुनयास, मालव और शिबि राजस्थान के विभिन्न हिस्सों में जा बसे थे।

उपरोक्त अधिकांश राजाओं के बारे में पाणिनि के ग्रंथ में उल्लेख मिलता है। मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात इन राजाओं ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर सिंधु, ब्यास और सतलुज के बीच विभिन्न क्षेत्रों को अपने अधीन करना शुरू कर दिया। लेकिन भारत–यूनानियों और कुषाणों के आक्रमण से उनकी शांति बाधित हुई। यह शायद मिनंडर I के आक्रमण से हुआ कारण था, जिसने दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. के मध्य या तीसरी तिमाही में पूर्व और पश्चिम पंजाब दोनों पर विजय प्राप्त की थीतथा मालवों को हरियाणा क्षेत्र की ओर और फिर पूर्वी राजस्थान की ओर बढ़ने के लिए मजबूर किया था। शिबि का भी यही हाल था जो मालवों के समकालीन थे और पड़ोसी भी। मालवाओं की तरह वे भी मिनंडर द्वारा अपने क्षेत्र पर कब्जे के बाद पूर्वी राजस्थान चले

गए। यौधेय तो पहले चरण में इंडो–ग्रीक द्वारा हरियाणा के रोहतक के आसपास के क्षेत्र में धकेल दिए गए, फिर शक–पहलवाओं द्वारा राजस्थान में और बाद में सम्भवतः कुषाणों के हटने के पश्चात वे अपने मूल निवास स्थान की ओर चले गए। कुणिन्दों को कुषाणों के सामने झुकना पड़ा। वृष्णियों ने एक अलग परिदृश्य पेश किया। यद्यपि वे कुषाण शासन का आक्रमण झेलते रहे तथा कुषाण के बाद स्वतंत्र भी हुएलेकिन बाद में यौधेयों द्वारा उखाड़ फेंके गए। बी. डी. चट्टोपाध्यायके अनुसार, 'मौर्यकाल के बाद के पंजाब का महत्व इस तथ्य में निहित है कि राजनीतिक–आर्थिक परिदृश्य में समग्र परिवर्तन और संचार के नए नेटवर्क का शुभारम्भ इसी काल में हुआ तथा प्रारंभिक गणसंघों की संरचनाओं में भी परिवर्तन देखा गया। गुप्त काल के दौरान उनकाअंत हुआ'।

ये गणसंघ राज्य संक्रमण काल से गुजर रहे थे तथा इस काल में सामाजिक विभेदीकरण नहीं था। शुरु–शुरु में इन्होंनेगण या समुदाय के नाम पर सिक्के जारी किए। साहित्य में वे ज्यादातर गणराज्यों' या आदिवासी राज्यों के नाम से जाते हैं।

बोध प्रश्न–2

1) उत्तर भारत की आदिवासी राजतंत्रोंपर एक नोट लिखें।

_____

_____

_____

_____

_____

2) विदेशियों की भारतीय मुख्यधारा में आत्मसात करने पर एक नोट लिखें।

_____

_____

_____

_____

_____

1.10 सारांश

इस इकाई से हमें पता चला कि उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिमी भाग में मध्य एशियाई शक्तियों ने हिंदुकुश के दक्षिण में मथुरा तक के क्षेत्रों में घुसपैठ की थी। वास्तव में हिंदु–कुश के उत्तर और दक्षिण के क्षेत्रों के बीच की सीमा रेखा अत्यंत प्रवाही थी और आपसी संपर्क गहन थे ।

ग्रीक, शक, पार्थियन और कुषाण धीरे–धीरे भारतीय समाज में विलीन हो गए। वे योद्धाओं के रूप में आए थे और इसलिए उनमें से अधिकांश भारतीय समाज में क्षत्रियों के रूप में स्थापित हो गए थे। इस अवधि में व्यापार और वाणिज्य में रुचि रखने वाले विभिन्न शासक घरानों ने आर्थिक जीवन में अभूतपूर्व वृद्धि देखी जो अर्थव्यवस्था के

सभी क्षेत्रों में दिखाई दे रही थी। इंडो–ग्रीक, शक, पार्थियन और कुषाणों ने सोने, चांदी और तांबे के सिक्के जारी किए। कुषाण द्वारा जारी सिक्कों का अनुसरण गुप्त वंश ने किया। मध्य प्रदेश और राजस्थान (मालव, अर्जुनयाय, यौधेय आदि) में कई गैर–राजशाही कुलों से जुड़े क्षेत्रों में तांबे के सिक्के और सिक्के के सांचे बड़ी संख्या में पाए गए हैं।

1.11 शब्दावली

चैत्य : एक बौद्ध पुण्य स्थल

गण : एक शब्द जिसके कई अर्थ हैं, जिसमें एक कुलीनतंत्र शामिल है

क्षत्रप : सिथियों–पार्थियन्स का एक वायसराय या अधीनस्थ शासक; क्षत्रप और कर्दमक वंश के राजाओं द्वारा ग्रहण की गई एक उपाधि

क्षत्रिय : युद्ध और शासन से जुड़ा वर्ण

यवन : ग्रीक, पश्चिम के विदेशी

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1 (क) ✓ (ख) ✓ (ग) X

2 (क) भाग 1.4 और उसके उप–भाग देखें ।

(ख) भाग 1.3 देखें।

बोध प्रश्न–2

1 भाग 1.9 देखें।

2 भाग 1.8 देखें।

1.13 संदर्भ ग्रन्थ

घोष, सुचंद्र (2017).स्टेट, पावर ऐंड रेलिजियन इन द इंडो–इेरानियन बोररलैंड्स एंड नोर्थ–वेस्ट इंडिया, सिरका 200 बी.सी.ई.–200 ए.डी. *स्टडीज़ इन पीपल्स हिस्ट्री.* स्पेशल इश्यू, स्टेट एंड रलिजियन इन इंडिया वॉल्यूम 4, इश्यू 1, जून, 1–14.

हबीब, इरफान (2012). *पोस्ट–मौर्यन इंडिया, 200 बी.सी.–ऐ.डी. 300 : ए पोलिटिकल एंड इकनोमिक हिस्ट्री.* नयी दिल्लीः तुलिका बुक्स.

मजूमदार, आर.सी. (1990). *दे ऐज ऑफ इंपीरियल यूनीटी.* बॉम्बेः भारतीय विद्या भवन.

मुखर्जी, बी.एन. (1988). *राईज़ एंड फॉल ऑफ द कुषाण एंपायर.* कोलकताः फर्मा के एलएम.

रॉयचौधरी, एच.सी. (1996). *पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशियट इंडिया.* कमेन्टरी बाई बी. एन.मुखजी. दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 क्षेत्रीय शक्तियों का उदय*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 पूर्व–इतिहास

2.3 इंडो–ग्रीक

2.4 पश्चिमी भारत के शक–क्षत्रप

2.5 सातवाहन

2.5.1 स्रोत

2.5.2 पूर्ववृत्त

2.5.3 सातवाहनों का राजनीतिक इतिहास

2.5.4 प्रशासन

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

*प्रो. सुचंद्रा घोष, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकता।

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगे :

- मौर्य काल के उपरांत से लेकर 300 सी.ई. तक उत्तर–पश्चिमी, पश्चिमी भारत और दक्कन की राजनीतिक घटनाएँ;
- सातवाहन वंश जिसने दक्कन में सबसे पहले राज्य की स्थापना की थी; तथा
- इस अवधि के दौरान सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में बदलाव।

2.1 प्रस्तावना

आपने पूर्व इकाई में पढ़ा है कि मौर्य साम्राज्य के विघटन के बाद, 200 बी.सी.ई. से शुरू होने वाला काल ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण है, जिसमें भारतीय समाज में विदेशी तत्वों के आत्मसात होने के साथ मध्य एशिया के साथ व्यापक सांस्कृतिक संपर्क थे। उत्तर और उत्तर–पश्चिम भारत में, कई राजनीतिक तंत्र उभरे। शुंग, इंडो–सिथियन, इंडो–पार्थियन और कुषाण जैसी कुछ हुकुमतों के बारे में पहले की इकाई में विस्तार से चर्चा की गयी है।

इस अवधि में, दक्कन और दक्षिण भारत के क्षेत्रों में भी परिवर्तन हो रहा था। उत्तर भारत में प्रादेशिक राज्यों की शुरुआत सोलह महाजनपदों के प्रतिनिधित्व के रूप में हुई, जिसकी उत्पत्ति 6ठी–5वीं शताब्दी बी.सी.ई. में हुई थी।हमने यह भी पढा कि कैसे अगली कुछ शताब्दियों में मगध ने लगभग पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को शामिल करते हुए एक दुर्जेय राज्य का निर्माण किया। हालांकि, दक्कन और प्रायद्वीपीय भारत में,

राज्य की संस्था के उदय को पहली शताब्दी बी.सी.ई. में सातवाहन के उदय तक इंतजार करना पड़ा।

इस इकाईमें, हम अपना ध्यान उन राजवंशों पर केंद्रित करेंगे, जोपूर्व इकाई मेंशामिल नहीं थे, लेकिन इंडो–ग्रीक और क्षत्रपों के समान महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त, सातवाहनों के बारे में अध्ययन किया जाएगा।

2.2 पूर्व–इतिहास

यदि हम समय में थोड़ा पीछे जाएँ, तो पाते हैं कि पश्चिमी दक्कन में ताम्र युग की बस्तियों का प्रसार दूसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. में हुआ था। पहली सहस्राब्दी बी.सी.ई. की दूसरी छमाही में पूर्वी दक्कन में लौह सामग्री का उपयोग करने वाली समुदायों ने कब्जा कर लिया था। ये सभी बस्तियाँ ग्रामीण थीं जिनमें बड़ी संख्या में जनजातियाँ निवास करती थीं। महाकाव्य और पुराणों में आन्ध्र, सबरस, पुलिन्द आदि जैसे कई जनजातियों का उल्लेख है जो दक्कन में रहती थी। अशोक के शिलालेखों में भी इनका उल्लेख है। परिवर्तन की प्रक्रिया दक्कन में मौर्य विस्तार के साथ शुरू हुई। मौर्य कर्नाटक और आंध्र प्रदेश से सोने, हीरे और जवाहरात जैसे खनिज संसाधनों के दोहन में रुचि रखते थे। इन संसाधनों को मगध तक पहुँचाने के लिए भूमि और तटीय मार्गों का उपयोग किया गया था। आंध्र प्रदेश के गुंटूर जिले में कृष्णा के तट पर धरनिकोटा और महाराष्ट्र के सतारा जिले में करड जैसी कई क्षेत्रों में समृद्ध बस्तियाँ थीं। कई प्रमुखों जैसे महारठियों ने विस्तृत फैले भूभागों पर शासन किया। सातवाहनों

का महारठियों से विवाह के संबंध स्थापित थे और सत्ता में आने के साथ ही उन्होंने दक्कन में पहले राज्य की नींव रखी।

सातवाहन के उदय से पहले, स्थानीय राजा और कुछ महत्वपूर्ण परिवारों का शासन था। उदाहरणों में उन महारठियों के नाम शामिल हैंजिन्होंने दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. में अपने स्वयं के सिक्के ढालने का काम शुरू किया था। सातवाहन के तहत पहला संगठित राज्य उभरा और दक्कन की राजनीतिक और सामाजिक संरचना में त्वरित परिवर्तन हुआ। इस क्षेत्र में सातवाहन और भी महत्वपूर्ण बन जाते है क्योंकि वे दक्कन में राज्य की संस्था को समस्यात्मक बनाते है।

आइए सबसे पहले इंडो–ग्रीक की चर्चा करें।

2.3 इंडो– ग्रीक

सिकंदर के नेतृत्व में यूनानी, बैक्ट्रिया (बहलिका) में जा बसे थे जो वर्तमान उत्तरी अफगानिस्तान और दक्षिणी तुर्कमेनिस्तान एवं उजबेकिस्तान का क्षेत्र है। सेल्यूकस साम्राज्य जो बैक्ट्रिया और पार्थिया के निकटवर्ती क्षेत्रों में सिकंदर के पतन के बाद बना था, डायोडोटस प्रथम लगभग (250–230 बी.सी.ई.) द्वारा उखाड़ फेंका गया। उसने सेल्यूकस के खिलाफ विद्रोह कर एक स्वतंत्र बैक्ट्रियन यूनानी राज्य की स्थापना की। एक तरफ पश्चिम एशिया और मध्य एशिया और दूसरी तरफ दक्षिण एशिया को जोड़ने वाले बैक्ट्रिया की आदर्श भौगोलिक स्थिति की वजह से यूनानी–बैक्ट्रियन साम्राज्य महत्वपूर्ण बना। जल्द ही बैक्टिरियन यूनानियों ने हिंदुकुश के दक्षिण के क्षेत्रों में भी

अपने नियंत्रण का विस्तार किया। लगभग 145 बी.सी.ई. में, उन्होंने बैक्ट्रिया पर अपनी पकड़ खो दी लेकिन उत्तर–पश्चिम भारत के कुछ हिस्सों पर उनका शासन जारी रहा। बैक्ट्रियन यूनानीग्रीक जो दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. और पहली शताब्दी सी.ई. के बीच उत्तर–पश्चिम भारत के कुछ हिस्सों पर शासन कर रहे थे, इंडो–ग्रीक या इंडो–बैक्ट्रियन के रूप में जाने जाते हैं।

इंडो–ग्रीक के इतिहास को बड़े पैमाने पर उनके सिक्कों के आधार पर खंगाला गया है। ये सिक्के राजवंश से सम्बंधित थे और शासक के संप्रभु अधिकार के संकेतकथे। पहली बार, हिंदूकुश के दक्षिण में स्थित क्षेत्र में कुछ साँचे से बने सिक्के प्राप्त हुए हैं जिसपर राजाओं की तस्वीरें व किवदन्ती अंकित थीं। हालांकि, कुछ शासकों के बारे में ग्रीक और लैटिन स्रोतों से भी जानकारी मिली है। बैक्ट्रियन घटनाओं के बारे में विस्तृत जानकारी पोम्पेयस ट्रोगस के लैटिन *फिलीपिक हिस्ट्रीज़* से मिलती है, जो संग्रहित रूप में संरक्षित है। बैक्ट्रियन इतिहास के कुछ तथ्य डायोडोरस, पॉलीबियस या स्ट्रैबो में संरक्षित हैं।

बहुत कम समय में बड़ी संख्या में शासकों की उपस्थिति बताती है कि उनमें से कुछ ने साथ–साथ शासन किया होगा। डेमेट्रियस प्रथम, डेमेट्रियस द्वितीय, एपोलोडोटस, पैंटालियोन और एगाथोकल्स हिंदूकुश के दक्षिण में उत्तर–पश्चिमी भारत में शासन विस्तार के लिए नायक थे। 42 ग्रेको–बैक्ट्रियन और इंडो–ग्रीक राजाओं में से, 34 को केवल उनके सिक्कों के माध्यम से जाना जाता है। राजाओं का क्रम जो विद्वानों द्वारा

प्रस्तावित किया गया है वह सिक्कों के भंडार के स्वरूप, एक सिक्कें पर दूसरे सिक्के का ठप्पा, नाम चिन्ह, पैटर्न, सिक्कों की भौगोलिक वितरण और शैलीगत विशेषताओं की संरचना पर आधारित है।

ग्रीक –बैक्ट्रियन के सिक्के, जो हिंदुकुश के उत्तरी क्षेत्र में परिचालित थे, ज्यादातर सोने, चांदी, तांबे और निकल (गिलट) के बने थे। उन्होंने अटारी(अतिक) वजन मानक का पालन किया। उन पर ग्रीक किंवदंतियों, शाही चित्र और ग्रीक देवताओं के साथ राजा के नाम और पदनामअंकित है। दूसरी ओर, इंडो–ग्रीक के सिक्के जो हिंदुकुश के दक्षिण के क्षेत्रों में परिचालित थे, ज्यादातर चांदी और तांबे से बने थे। भारतीय क्षेत्रों पर विजय के लिए द्विभाषी और द्वि–विषयक सिक्कों को जारी करने की आवश्यकता पडी। कुछ विशेष प्रकार के सिक्के मिले हैं जिसपर ब्राह्मी लिपि में लिखित किंवदंतियां अंकित हैं। उदाहरणार्थ, एक प्रकार का सिक्का एगाथोकल्स का मिला है, जिसके अग्रभाग में ब्राह्मी में लिखित प्राकृत भाषा की एक किंवदति है '*रजाइन अगथोकोलेउस* और इसके पीछे ग्रीक लिपि एवं भाषा में '*बेसिलस अगथोकोलेउस* लिखा है। इन भारतीय सिक्कों ने भारतीय वजन मानक का पालन किया। शाही चित्रों के अलावा, सिक्कों पर भारतीय धार्मिक प्रतीकों का भी अंकन हुआ था।

इंडो–ग्रीक का कोई भी अध्ययन मिनेंडर प्रथम सोटर को मुख्य नायक बताता है। एकतो वह उन सभी इंडो–ग्रीक राजाओं से श्रेष्ठ था जिन्होंने उपमहाद्वीप में उससे पहले या बाद में शासन किया। यह उसकी सिक्कों की संख्या एवं चांदी और कांस्य के

सिक्कों के ठप्पे व नामचिन्ह की विभिन्नताओं से स्पष्ट है। दूसरे, दुनिया भर के सभी सार्वजनिक और निजी संग्रहों में और हाल के सिक्कों की तुलना में, उसके सिक्के समकालीन व किसी भी यूनानी शासकों के सिक्कों से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं। तीसरा, वह एकमात्र यूनानी राजा था जिसका भारतीय साहित्य में भी उल्लेख है। दो क्लासिकल लेखक पोम्पेयस ट्रोगस और स्ट्रैबो,मेनेंडर का उल्लेख करते है। ट्रोगस के अनुसार वह एक बैक्ट्रियन राजा था जो भारतीय गतिविधियोंमें खुलकर भाग लेता था। आर्टेमिता के अपोलोडोरस के प्राधिकार पर स्ट्रैबो लिखते हैं कि बैक्ट्रियन यूनानियों ने सिकंदर की तुलना में अधिक भारतीय शासकों को परास्त किया।

इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि मेनेंडर सोटर के समय तक, काठियावाड़ प्रायद्वीप और सिंधु डेल्टा उसके नियंत्रण में था। *पेरिप्लस ऑफ दी एरिथियन सी* में अपोलोडोटस और मेनेंडर के बेरिगाजा में ड्रेकम्सके परिचालन का जिक्र है। मेनेंडर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को *मिलिंदपन्हा* (मिलिंद के प्रश्न, दूसरी/प्रथम सदी बी.सी.ई.) से संगठित किया जा सकता है जिसमें बौद्ध भिक्षु नागसेन के साथ उसकी चर्चा व उसके सिक्कों की जानकारी मिलती है।*मिलिंदपन्हो* के पाली संस्करण से पता चलता है कि वह कलसीगाम (*कलसिगामों नामों तथाहम् जाति बी*), बेगराम, कवीसी नाम के स्थान में पैदा हुआ था। *मिलिंदपन्हो* का कहना है कि उसकी राजधानी सगल थी, जिसकी पहचान आमतौर पर पाकिस्तान में सियालकोट के साथ जुड़ी है। सिक्कों की पहली श्रृंखला इंडो–ग्रीक साम्राज्य के पश्चिमी भाग में बनाई गयी, जिससे यह पता चलता है कि अपने पूर्ववर्तियों एंटिमैकस II और एपोलोडोटस I की तरह, वह कॉकेशस के

अलेक्जेंड्रिया शहर के सिंहासन पर आसीन हुआ। मेनेडंर के सिंहासन पर आसीन होने की तारीख आमतौर पर 155 बी.सी.ई. मानी जाती है। हालांकि अन्य तारीख 165 बी.सी. ई. का भी उल्लेख मिलता है।

चित्र 2.1 मेनेन्डर सोटर का व्हील सिक्का। Obv: BA□IAEΩ□ □ΩTHPO□ MENANΔPOY "उद्धारकर्ता किंग मेनेंडर की"। उल्टे भाग पर: विजय का ताड़। खरोष्ठी की किंवदंती–*महाराजस त्रपदास मेनेंदरास*। ब्रिटिश संग्रहालय। श्रेय: गार्डनर, पर्सी, 1846–1937; पूल, रेजिनाल्ड स्टुअर्ट, 1832–1895। स्रोत: विकिमेडिया कॉमन्स. (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Menander_Soter_wheel_coin.jpg)

मेनेंडर I ने अपनी शक्ति क्षमता का व्यापक विस्तार किया और नए मौद्रिक प्रकारों और प्रणालियों के तहत टकसाल से असंख्य सिक्के ढलवाए। वह उत्तर–पश्चिम के कई क्षेत्रों को एकीकृत कर पूरे इंडो–ग्रीक साम्राज्य का वास्तविक सम्राट बना। हालांकि,

इस बात का कोई ठोस सबूत नहीं है कि मेनेंडर ने बौद्ध धर्म को अपनाया था किंतु उसने इस धर्म को बहुत हद तक संरक्षण अवश्य दिया होगा ।

अगाथोक्लेयाजो मेनेंदर की रानी थी और उसका बेटा स्ट्रैटो प्रथम (लगभग 135से 125 बी.सी.ई.) ने गांधार पर शासन किया। अगाथोक्लेया ने मेनेंदर की मृत्यु के पश्चात अपने अवयस्क पुत्र स्ट्रैटो प्रथम के संरक्षक के रूप में काम किया।

चित्र 2.2 भारहुत यवन। संभवतः इंडो–ग्रीक किंग, मेनेंडर । ग्रीक राजा के हेडबैंड के साथ, हेलेनिस्टिक चुन्नट के साथ उत्तरी अंगरखा, और उसकी तलवार पर बौद्ध त्रिरत्न प्रतीक। भारहुत, दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. , भारतीय संग्रहालय, कोलकता। श्रेयः यूज़रः G41m8 स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स. (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Bharhut_Yavana.jpg)

हिंदूकुश के दक्षिण क्षेत्र में मेनेंदर के बाद इंडो–ग्रीक शासन के दौरानउसके समकालीन तीन शासक हुए : लिसियस (120से 110 बी.सी.ई.), एंटियालकिडस (115से 95 बी.सी.ई.) और हेलीओलस II (110से 100 बी.सी.ई.)।हेलियोडोरस के बेसनगर स्तंभ शिलालेख में स्ट्रैटो प्रथम के अलावा एंटियालकिडस का तक्षशिला के राजा के रूप मेंउल्लेख है, जिसका राजदूत हेलियोडोरस था। उसका विदिसा के राजा (मध्य प्रदेश में) काशीपुत्र भागभद्र से खूब मेल–मिलाप था। चूँकि स्ट्रैटो प्रथम द्वारा उपयोग किए गए सभी नाम चिन्ह हेलिओकल्स द्वितीय द्वारा भी उपयोग किये गये थे, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि उसने स्ट्रैटो के टकसालों और क्षेत्रों पर भी नियंत्रण कर लिया होगा। इन शासकों ने उत्तर–पश्चिम भारत के विभिन्न क्षेत्रों में एक साथ शासन किया होगा। बाद के इंडो–ग्रीक शासकों का शासन काल बहुत कम समय के लिए था। पंद्रह साल की छोटी अवधि में दस शासकों के शासन का उल्लेख है जो उस समय की राजनीतिक अस्थिरता को दर्शाता है। पार्थियन और शक के साथ संघर्ष के परिणाम स्वरूप गांधार पर इंडो–ग्रीक शासन समाप्त हो गया। झेलम के पूर्व के क्षेत्र पर उसके नियंत्रण की समाप्ति पहली शताब्दी बी.सी.ई. के अंत में यापहली शताब्दी सी.ई. में क्षत्रप शासक

राजुवुला के हाथों उनकी हार के साथ समाप्त हुई। शासन के बुरे दौर में उनका अंतिम गढ़ पूर्वी पंजाब में था।

2.4 पश्चिमी भारत के शक–क्षत्रप

सिथियन –पार्थियन अपने क्षत्रपों (वाइसराय या अधीनस्थ शासकों) के माध्यम से शासन करते थे। कुषाण काल में पश्चिमी भारत के कुछ हिस्सों पर क्षत्रपों का शासन था। मौर्य काल के बाद गुजरात, सौराष्ट्र और मालवा में शासन करने वाले शासकों के एक समूह को पश्चिमी क्षत्रप के रूप में जाना जाता है।

क्षत्रप शासकों की दो महत्वपूर्ण पीढियाँ थीं: क्षहरत और कार्दमक। हाल ही में क्षहरत परिवार के केवल दो सदस्यों भूमक और नाहपण के बारे में जानकारी थी। एक अन्य नाम, अघुडका या अभेदक को अब सिक्कों से जाना जाता है, जो अपने सिक्कों पर परिवार का नाम क्षहरत अंकित कराता था। लगता है कि भूमक मूल रूप से कनिष्क के प्रति निष्ठा रखने वाला था। ब्राह्मी और खरोष्ठी में लिखे उपख्यान वाले उसके सिक्के तटीय गुजरात में पाए गए हैंतथा कुछ मालवा और अजमेर क्षेत्र में भी प्राप्त हुए हैं। भूमक के तुरंत बाद नाहपण ने राजगद्दी सम्भाली क्योंकि उसके तांबे के सिक्के उसी प्रकार के थे जैसे कि भूमक द्वारा जारी किए गए थे।

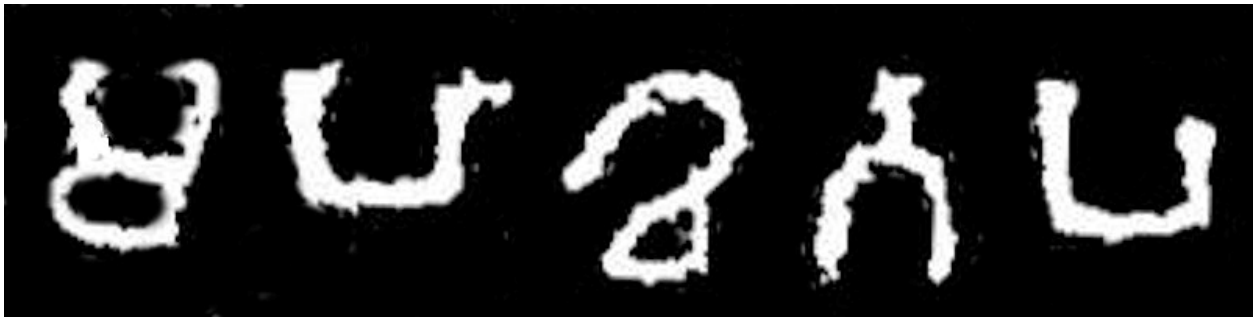

चित्र 2.3 प्रधानमंत्री अयामा द्वारा ब्राह्मी में अपने शासक, नाहपणके नाम पर समर्पित शिलालेख। यहाँ लिखा है ''*महाखतपा* ("महान क्षत्रप'')''। मनमोदी गुफाएं, लगभग 100 सी.ई.। स्रोतः जैस बर्ज़ेस, 1883. विकिमीडिया कॉमन्स। (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Mahakhatapa.jpg)

नाहपणके बारे में जानकारी उसके सिक्कों से ही नहीं, बल्कि दामाद उस्वदत्ता और मंत्री अयामा द्वारा दिए गए दान, जिनका उल्लेख उनकेअभिलेख में हैं, से भी प्राप्त होता है। *पेरिप्लस* के नंबनस और जैन स्रोतों के राजा नरवाहन से नाहपणके बारे में जानकारी मिलती है। नाहपणके सिक्के राजस्थान के अजमेर और महाराष्ट्र के नासिक क्षेत्र में पाए गए हैं। पहले के शिलालेखों में नाहपण क्षत्रप उपाधि इस्तेमाल करता था और बाद में महाक्षत्रप व राजन। उसने कमोबेश स्वतंत्र रूप से शासन किया था। नाहपणका राज्य मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र, उत्तरी महाराष्ट्र, राजस्थान के कुछ हिस्से और निचली सिंधु घाटी तक फैला था। राजधानी मीननगर उज्जैन और ब्रोच के बीच में थी और शायद इसकी पहचान दोहा नाम से थी।

अभिलेखों व सिक्कोंसे पता चलता है कि कुछ क्षेत्रों, जो विशेष रूप से पश्चिमी समुद्री तट तक पहुँचने के मार्ग प्रदान करते थे,समय समय पर शकों और सातवाहनों के शासन के अधीन थे। सातवाहनों के हर्जे पर नाहपणराजनीतिक नियंत्रण हासिल करने में सफल रहा था, जिसकी पुष्टि उन क्षेत्रों (जो सातवाहनों के केन्द्रीय क्षेत्र थे) से प्राप्त उनके अभिलेखों से होती है।महाराष्ट्र के नासिक से प्राप्त तीन शिलालेखव कार्ले और जुन्नर (दोनों पुणे के करीब स्थित हैं) के एक–एक शिलालेख इस क्षेत्र में साम्राज्य गठन की पुष्टि करते हैं। नासिक के एक शिलालेख में भृगुकच्छ (ब्रोच, गुजरात), दासपुरा (पश्चिमी मप्र में मंडसोर), सुरपराका (सोपारा, मुंबई का एक उपनगर) और गोवर्धन (नासिक) पर उसके शासन होने का उल्लेख है। हालाँकि,सातवाहन शासक गौतमीपुत्र सातकर्णी द्वारा नाहपणकी हत्या के पश्चात सम्भवतःक्षहरत साम्राज्य के दक्षिणी क्षेत्रों को अपने अधिकार में लिया गयाथा।

नाहपणके आखरी वर्षों में एक अन्य क्षत्रप शासकों का उदय हुआ।

चित्र 2.4 नाहपणका चांदी का सिक्का। ब्रिटिश संग्रहालय। श्रेयः अपलोडटाल स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स.

(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Silver_coin_of_Nahapana_British_Museum.jpg)

वह चष्टाण था जो कार्दमक परिवार से था। इस परिवार का नाम कन्हेरी के एक शिलालेख में पाया गया है, जहाँ रुद्रदमन (चष्टाण के पोते) की बेटी, जो वशिष्ठिपुत्र सातकर्णी की रानी थी, खुद के बारे में बताती है कि उसका जन्म कार्दमक परिवार में हुआ था। चष्टाणने अपने पहले के सिक्कों पर 'क्षत्रप' और बाद के सिक्कों पर 'महाक्षत्रप' की उपाधि का इस्तेमाल किया तथा पूरे शासन काल में सिक्कों पर'राजन' की उपाधि धारण की। चष्टाण ने 78 सी.ई. में अपना शासन आरंभ किया।

पश्चिमी गुजरात के कच्छ से प्राप्त अंधऊ शिलालेख से पता चलता है कि चष्टाण ने शक सम्वत 52 (130 सी.ई.) में अपने पोते रुद्रदमन प्रथम के साथ मिलकर शासन किया। चष्टाण के पुत्र का नाम जयदमन था। उस समय के दुर्लभ सिक्कों से ऐसा प्रतीत होता है कि उसका शासन काल सम्भवतः संक्षिप्त था और उसकी मृत्यु उसके पिता से पहले हुयी थी। चष्टाण को टॉलेमी की कृति *जियोगरफी* में टाइस्टेनेस के रूप में भी जाना जाता है और कहा जाता है कि अवंति के उज्जयिनी में उसकी राजधानी थी। इससे पता चलता है कि सातवाहनों ने पश्चिमी मालवा में आक्रमण कर उज्जयिनी को काफी क्षति पहुँचायी थी। रुद्रदमन प्रथम, कार्दमक परिवार का सबसे महत्वपूर्ण शासक था। उसके शासनकाल में शक साम्राज्य की शक्ति में काफी वृद्धि हुई। शक सम्वत 72 (150 सी.ई.) में जूनागढ़ से प्राप्त प्रसिद्ध शिलालेख इस बात की गवाही देता है। उन्होंने महाक्षत्रप की उपाधि धारण की। 150 सी.ई. में रुद्रदमनद्वारा ग्रहण की गयी 'महाक्षत्रप' उपाधि दर्शाती है कि सामान्य क्षत्रप की तुलना में उसका राज्य निश्चित रूप से विशाल व विस्तृत था। इस प्रकार रुद्रदमन ने शायद 150 सी.ई. में कुषाणों से स्वतंत्र होकर अपना राज्य स्थापित कर किया था। रुद्रदमन ने 150 सी.ई. में अकरवंती, अनर्त्त (काठियावाड़ का उत्तरी भाग), सौराष्ट्र (काठियावाड़ प्रायद्वीप), स्वभ्रा (साबरमती के तट पर), कच्छ (कच्छ), सिंधु–सौवीरा (निचली सिंधु घाटी), कुकुरा, अपरान्त और निशाद (विंध्य और पारिपत्र पर्वत के बीच कहीं स्थित है)पर अपनी सत्ता स्थापित की। इनमें से कुछ स्थान/क्षेत्र कभी सातवाहन के अधीन थे जो रुद्रदमन द्वारा जीत लिए गए थे । जूनागढ़ प्रशस्ति के अनुसार, रुद्रदमन प्रथम ने दो बार दक्कन के राजा

सातकर्णी को पराजित किया, लेकिन रिश्ते की निकटता के कारण उन्हें बख्श दिया; इससे उसे काफी प्रसिद्धि मिली। कन्हेरी के एक शिलालेख से हमें पता चलता है कि सातवाहन राजा वाशिष्ठिपुत्र सातकर्णी ने महाक्षत्रप रु .. की बेटी से विवाह किया था, (नाम दुर्भाग्यवश अधूरा है और इसलिए सुपाठ्य नहीं है)। यदि महाक्षत्रप रु..., ही रुद्रदमन प्रथम है, तो पराजित सातवाहन राजा वसिष्ठिपुत्र सातकर्णी हो सकते हैं, जो रुद्रदमन के दामाद होने के कारण विरोधी शकों द्वारा उनके साम्राज्य को कोई नुकसान नहीं पहुँचा सके।

चित्र 2.6 रुद्रदमन I (130–150) का चांदी का सिक्का। सीधे भाग परः रुद्रदमन काधड़, भ्रष्ट ग्रीक किंवदंतीOVONIΛOOCVΛCHΛNOके साथ। उल्टे भाग परः तीन धनुषाकार पहाड़ी या चैत्य नदी के साथ अर्धचंद्र और सूर्य के साथ। ब्राह्मी किंवदंती *राजनो क्षत्रपसरुद्रदमन*, "राजा और महान क्षत्रप जयदमन का पुत्र"।

स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स.

(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Coin_of_Rudradaman.jpg)

जूनागढ़ रियासत की प्रशस्ति से राज्य द्वारा लगाए गए विविध करो सेराजस्व जरूरतों के बारे में पता चलता है। इस शिलालेख में बताया गया है कि रुद्रदमन प्रथम का खजाना (कोष) सोने(कनक), चांदी (रजत) एवं अन्य कीमती धातुओं और रत्नों से भरा हुआ था, जो कि विभिन्न प्रकार के करों (यथवप्राप्त) जैसे, जमीन (*बली*) का किराया,कृषि उपज का एक अंश (*भाग*) तथा टोल और सीमा शुल्क (*शुल्क*) के रूप में संग्रहित किए गए थे। राजस्व कर के रूप में *बली* और *भाग* तो अशोक के समय से ही प्रचलन में थे और यह किसानों पर लगाये जाते थे। *शुल्क* या टोल और सीमा शुल्क की वसूली निश्चित रूप से वाणिज्यिक लेनदेन से संग्रह की जाती थी। रुद्रदमन का उत्तराधिकारी अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण नहीं रख सका किंतु पश्चिमी मालवा, गुजरात और काठियावाड़ में पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ तक अपनी स्वतंत्र स्थिति बनाए रखने में कामयाब रहा।

बोध प्रश्न–1

1. मेनेंडर के संदर्भ में इंडो–ग्रीक पर चर्चा करें।

_____

_____

_____

_____

_____

2. पश्चिमी क्षत्रप कौन थे? उनकी मुख्य विशेषताओं की चर्चा करें।

_____

_____

_____

_____

_____

2.5 सातवाहन

सातवाहन, शक सम्राटों के समकालीन थे जिनका साम्राज्य सुदूर दक्कन क्षेत्र में फैला था। सातवाहन वंश ने मौर्य काल के बाद दक्कन में पहली राजशाही राजव्यवस्था की नींव रखी।

2.5.1 स्रोत

सातवाहन शासकों के नाम *पुराणों* में पाए गए राजाओं की सूची में हैं। हालाँकि इन सूचियों का उपयोग अन्य स्रोतों के साथ किया जाना आवश्यक है। ऐसा इसलिए क्योंकि, राजाओं के नाम और उनके शासन की अवधि अलग–अलग *पुराणों* में अलग–अलग है। *पुराणों* में बहुत सारे मिथक और किंवदंतियाँ हैं जो असमंजस की

स्थिति पैदा करते हैं। हालाँकि, *पुराण* एक महत्वपूर्ण स्रोत बन जाता है जब इसका अध्ययन अन्य स्रोतों जैसे कि सिक्के और शिलालेखों के साथ किया जाता है।

सातवाहनों ने सीसा, चांदी और तांबे की मिश्रित धातु में बड़ी संख्या में सिक्कों के ढालने का कार्य किया। उनके चांदी के सिक्कों में राजा की छवि और उनके नाम अंकित हैं। पत्थर काट कर बनाई बौद्ध गुफाओं से शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिसमें सातवाहन राजाओं और रानियों द्वारा बड़ी संख्या में लोगों को दिए गए दान का उल्लेख है। इन विभिन्न स्रोतों में उपलब्ध सूचनाओं की तुलना करके, विद्वान आमतौर पर स्वीकार करते हैं कि पहली शताब्दी बी.सी.ई.में सातवाहनों ने अपना शासन शुरू किया था। सबसे पहला रिकॉर्ड महाराष्ट्र के वर्तमान राज्य नासिक के पास एक गुफा में चट्टान पर उत्कीर्ण पाया गया है।

2.5.2 पूर्ववृत्त

पूर्व में विद्वानों का मत था मौर्यों के तुरंत बाद सातवाहन साम्राज्य एक बड़ी शक्ति के रूप में उभरा।हाल के उत्खनन और मुद्रा स्रोतों से एक अलग पूर्व–सातवाहन काल के बारे में पता चलता है जो मौर्यों के पतन और सातवाहन के उद्भव के बीच का काल है। बी. डी. चट्टोपाध्याय का मानना है कि मौर्यों के पतन के तुरंत बाद और सातवाहन के आगमन से पहले, दक्कन के विभिन्न हिस्सों में बड़ी संख्या में छोटी–छोटी राजनीतिक रियासतें उभरीं। स्थानीय शासकों के सिक्के जिनपर अक्सर महारठी नाम के शीर्षक होते थे, पूर्व–सातवाहन काल के वेरापुरम जैसे स्थलों पर विभिन्न चरणों में

पाए गए हैं। ब्रह्मपुरी में पूर्व–सातवाहन काल के कुरा शासकों के सिक्के प्राप्त हुए हैं। कोटालिंगला से प्राप्त अस्तरित सिक्कों पर गोभद्र, समिगोप, चिमुक, कामवाया और नाराना जैसे कई स्थानीय शासकों के नाम अंकित हैं।दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. के अंत मेंभट्टीप्रोलु के एक ताबूत के अवशेष पर कुबिरका नाम के राजा का उल्लेख पाया गया है। यह सब दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. के दौरान स्थानीय कुलीनों की शक्ति और उसकी स्थिति में उल्लेखनीय वृद्धि को दर्शाता है।

2.5.3 सातवाहनों का राजनीतिक इतिहास

सातवाहन साम्राज्य की शुरुआत पहली शताब्दीबी.सी.ई.के अंत तक हुई और यह अगले 250 वर्षों तक फलता–फूलता रहा। प्रथम शासक सिमुक (उत्तर पहली शताब्दी बी.सी.ई.) के साम्राज्य काल में मध्य दक्कन का पैठन क्षेत्र पूर्ण–सातवाहन काल का शीर्ष राजनीतिक केंद्र था। हालाँकि उनकी उत्पत्ति पूर्वी दक्कन में गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच स्थित क्षेत्र में हुई होगी।शुरू में उन्होंने केंद्रीय दक्कन में सत्ता स्थापित कीतथा प्रतिष्ठान (महाराष्ट्र का आधुनिक पैठन) को अपनी राजधानी बनाया।

सातवाहन और *पुराणों* के आंध्र को एक माना गया हैं। संस्कृत पुराणिक ग्रंथों में सातवाहनों का उल्लेख *आंध्र–जाति* या *आंध्र–भृत्यों* के रूप में किया गया है। इस बात पर बहस जारी है कि क्या सातवाहन शुरू में पूर्वी या पश्चिमी दक्कन में सत्ता में आए थे? चूंकि वे खुद को आंध्र कहते थे, वे शायद आंध्र जनजाति के थे। *आंध्र–भृत्य* शब्द का अर्थ कुछ विद्वानों द्वारा 'मौर्यों के अधीनस्थ' माना गया है (भृत्य का अर्थ है 'सेवक'

या 'अधीनस्थ')। हालाँकि आंध्र–भृत्य का अर्थ 'आन्ध्रों के सेवक' भी हो सकते हैं। इस प्रकार यह सातवाहनों पर नहीं बल्कि उनके उत्तराधिकारियों पर लागू हो सकता है।

आंध्र प्रदेश के करीमनगर जिले से प्रारंभिक सातवाहन सिक्के मिले हैं, जो दर्शाता है कि उनका शासन पूर्वी दक्कन में शुरू हुआ था। दूसरी ओर, नानेघाट और नासिक गुफाओं के शिलालेख उसे पश्चिमी दक्कन में शासन के शुभारम्भ करने की ओर इशारा करते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार यह संभव है कि पश्चिमी दक्कन के पैठन में उनका प्रारंभिक आधार क्षेत्र रहा हो, जहाँ से उन्होंने पूर्वी दक्कन, आंध्र और पश्चिमी तट तक राज्य विस्तार किया हो।

अशोक के शिलालेखों में आंध्र को मौर्य क्षेत्र की आबादी का हिस्सा होने का उल्लेख है। उनके स्वयं के शिलालेख उन्हें सातवाहन परिवार (सातवाहन–कुल) से संबंधित दर्शाते हैं और कभी भी उन्हें आंध्र या आंध्रभृत्य के रूप में नहीं दर्शाया गया। *पुराणों* से हमें आंध्र मूल के शासकों की अलग–अलग सूची मिली हैं; *मत्स्य* और *ब्रह्माण्ड पुराण* में उन 30 राजाओं का उल्लेख है जिसने 460 वर्षों तक शासन किया, *वायु पुराण* में 300 वर्ष तक शासन करने वाले 17 राजाओं की सूची है। *मत्स्य पुराण* की कुछ पांडुलिपियों में आंध्र शासन की छोटी अवधि 272/275 वर्षों का उल्लेख मिलता है। उत्कीर्ण लेख और मुद्रा–विद्या स्रोत से हमें लगभग पंद्रह सातवाहन राजाओं द्वारा शासन करने के साक्ष्य मिले हैं जिन्होंने वास्तव में शासन किया था। इसलिए, यह अधिक तर्कसंगत है कि दक्कन में पंद्रह या सत्रह सातवाहन शासकों ने 275 (50 बी.

सी.ई. से सी.ई. 225 तक) वर्षों के छोटे कालक्रम से 460 वर्ष की लंबी अवधि तक दक्कन में शासन किया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सातवाहन ने पहली शताब्दी बी.सी.ई. से लेकर तीसरी शताब्दी सी.ई. तक शासन किया।

मानचित्रः भारत, दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. में।श्रेयः चार्ल्स जोपेन। स्रोतः चार्ल्स जोपेन (लंदनः लॉन्गमैन, ग्रीन एंड कंपनी, 1907) द्वारा *"हिस्टोरिकल एटलस ऑफ इंडिया"*। विकिमीडिया कॉमन्स।

https://commons.wikimedia.org/wiki/File:India_2nd_century_AD.jpg

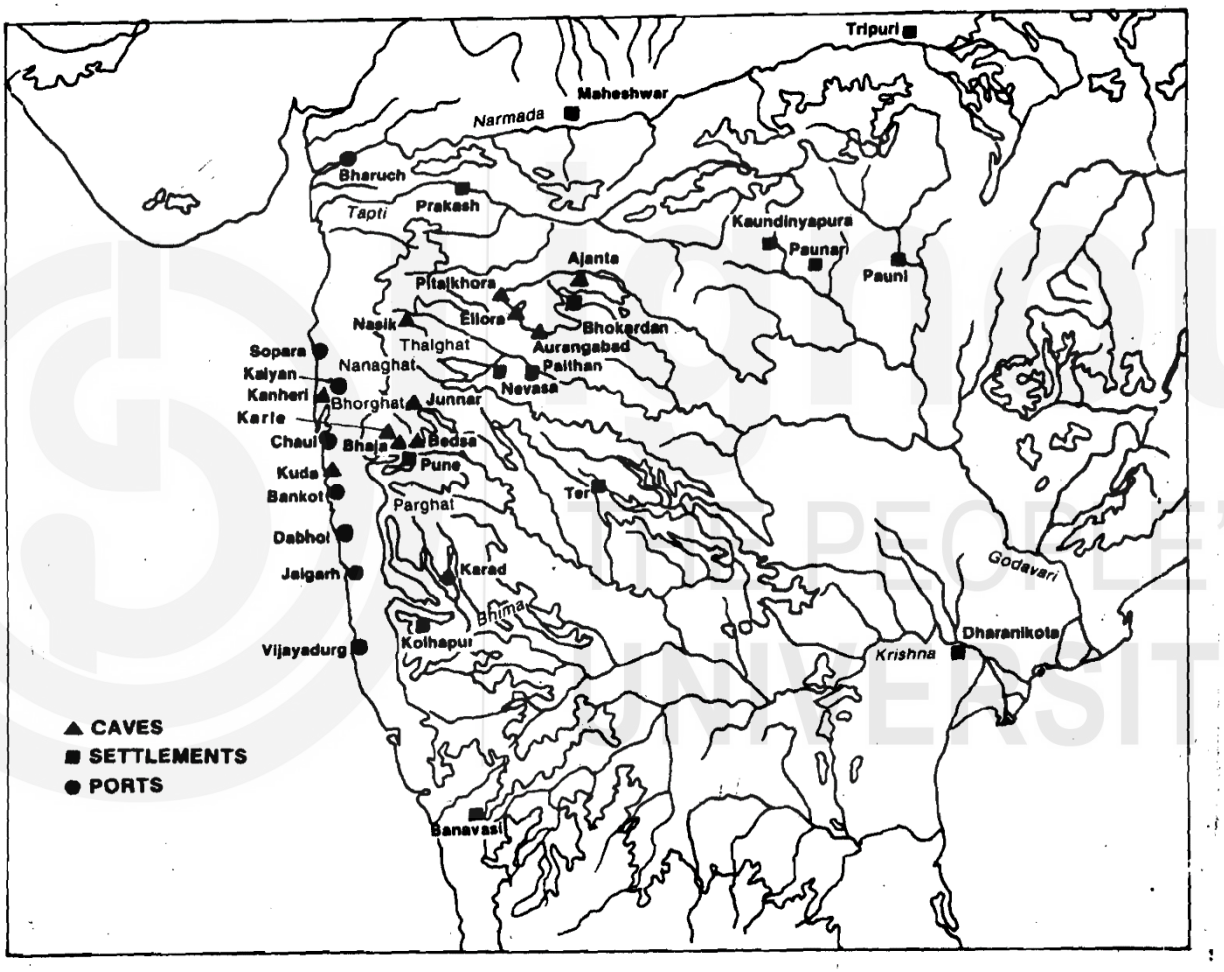

सातवाहन बस्तियाँ। स्रोतः EHI–02, खंड 7

यदि हम आरंभिक सातवाहन शिलालेखों के खोज स्थलों को देखें, तो हम पाते हैं कि वे पश्चिमी दक्कन में नासिक और नानेघाट में उपलब्ध हैं। नेवासा (अहमदनगर जिला,

महाराष्ट्र) में खुदाई से सातवाहनों के सिक्के मिले हैं। इससे पता चलता है कि केंद्रीय दक्कन उनके शासन में शामिल था। टॉलेमी की *'जियोगरफी* व *पुराणों* से संकेत मिलता है कि सातवाहन राजधानी प्रतिष्ठान (मध्य दक्कन में पैठण) में स्थित थी। बाद के शासक पश्चिम पर अपना नियंत्रण खो रहे थे और दूसरी शताब्दी सी.ई. के उत्तरार्ध में वे पूर्व और दक्षिण की ओर चले गए।

पुरातात्विक खोजों और पुराणिक सूचियों के अनुसारइस राजवंश का पहला ज्ञात शासक सिमुक (जिसे सिसुका भी कहा जाता है) था। उसके सिक्कों पर सिमुक की जगह छिमुक अंकितहै जिसने पहली शताब्दी बी.सी.ई. के आसपास शासन किया था। सिमुक के बाद उसका भाई कान्हा या कृष्ण ने गद्दी सम्भाली जिसने पूर्व में नासिक तक अपना साम्राज्य विस्तार किया। उसके बाद सातकर्णी आया। वह राजवंश का पहला शक्तिशाली शासक था और उसे नानेघाट में रानी नागनिका के शिलालेख में दक्कन (*दक्षिणापथपति*) के सरदार के रूप में माना जाता था। सातकर्णी के बारे में नासिक के दो अभिलेखों से जानकारी प्राप्त हुई है। खारवेल की प्रशस्ति में जिस सातकर्णी का जिक्र है शायद दोनो एक ही हैं। संभवतः उसने अपना राज्य विस्तार पूर्व की ओर किया क्योंकि उसके सिक्के विदर्भ के कौंडिन्यपुरा से बरामद किए गए हैं। सातकर्णी के पश्चात किसने शासन किया यह स्पष्ट नहीं है किंतु गौतमीपुत्र सातकर्णी के राज्याभिषेक से पहले गौतमीपुत्र शिव सातकर्णी नाम का एक और शासक था जिसके सिक्के हाल ही में प्राप्त हुए हैं। पुराणिक सूची में गौतमीपुत्र सातकर्णी के पूर्ववर्ती के रूप में एक शिव स्वाति का उल्लेख है।

राजवंश में अगला शक्तिशाली शासक गौतमीपुत्र सातकर्णी था। नासिक प्रशस्ति से हमें उसकी उपलब्धियों और व्यक्तित्व के बारे में पता चलता है।यह प्रशस्ति वशिष्ठिपुत्र पुलुमवी के शासनकाल के दौरान उनकी माता गौतमी बालाश्री द्वारा उत्कीर्ण की गई थी। उन्हें शक, यवनों और पहलवों का संहारक बताया गया है। इसमें उसे क्षहरत वंश के विनाश और सातवाहन परिवार के भाग्य की पुनर्स्थापना (*क्षहरतवस निरवरोशकर ... सातवाहन–कुल–यस–पतिथापना–करो*) का श्रेय भी दिया जाता है।

शक और सातवाहनों के बीच संघर्ष के तीन चरण थे। पहला चरण तब था, जैसा कि *पेरिप्लस ऑफ एरीथ्रिन सी* में वर्णित है, बैरगाजा के राजा, नंबनस ने कलिन (कल्याण) के बंदरगाह के चारों ओर एक नौसैनिक नाकाबंदी लगाई थी, जहां से उसने आने वाले जहाजों को बेरगाजा जाने के लिए मजबूर किया था। इस प्रकार कलिन की समृद्धि में ह्रास हुआ। लगभग 150 सी.ई. की टोलेमी की '*ज्योगरफी* में उल्लिखित बंदरगाहों में कलिन का नाम नहीं है। दूसरा चरण गौतमीपुत्रसातकर्णी के समय का था जिसका उल्लेख नासिक की प्रशस्ति और इन दो राजवंशों के सिक्कों में मिलता है। सातवाहन विजय का एक निश्चित संकेत जोंगलथेम्बी सिक्का भंडार से मिलता है जिसके 13,000 से अधिक सिक्केशक शासक नाहपण द्वारा जारी किए गए। इसके जवाब में गौतमीपुत्र सातकर्णी ने 9000 से अधिक सिक्के पर अपनी मुहर लगाई। यह जवाबी क्रिया – कलाप अपने प्रतिद्वंद्वी पर विजयी शासकों के वर्चस्व को दर्शाता है। अपने शासन के 18वें वर्ष में गौतमीपुत्र सातकर्णी ने भी नासिक के पास बौद्ध मठ को जमीनदान में दी, जो नाहपण के दामाद (*खेतम अजकलकियम् उसावादितां भुक्तम्*) उस्वदत्ताने प्राप्त की

थी। गौतमीपुत्र सातकर्णी जमीन पर अपना अधिकार और बौद्ध मठ को दान तभी कर सकता था जब शक शासक को खदेड़ दिया गया हो।

नासिक प्रशस्ति में गौतमीपुत्र सातकर्णी को गोदावरी और कृष्णा के बीच स्थित असिका (ऋषिका), असाका (ऋषिका के उत्तर में असमक), मूलक (मध्य दक्कन में प्रतिष्ठान के आसपास का क्षेत्र), कुकुरा (उत्तरी काठियावाड़), अनूप (नर्मदा के दक्षिण में माहिष्मती), विदभ (नागपुर में विदर्भ) और पश्चिमी मालवा में उज्ज़ैयिनी के आसपास स्थित अवंति और सांची–विदिशा–भोपाल क्षेत्र के पूर्वी मालवा अकारवंती में स्थित अकर का शासक बताया गया है। उसे विज (विंध्य या विंध्य श्रेणी का पूर्वी भाग), अछावत (रिक्षावत, नर्मदा के उत्तर में विंध्य का हिस्सा), परीछट (परिपत्र या वर्तमान अरावली पर्वत), सह्या (सह्याद्री या पश्चिमी घाट), कान्हागिरि (मुंबई के पास कन्हेरी), महेंद्र (पूर्वी घाट) और सेतागिरी (आंध्र प्रदेश के गुंटूर क्षेत्र में नागार्जुनकोंडा के पास की पहाड़ी) आदि पर्वतों के स्वामी (पर्वत–पति) के रूप में उल्लिखित किया गया है। उसके साम्राज्य को इस रूप में याद किया जाता है, जिसके सरदारों ने तीन समुद्रों (*तिसामुदा तोयापिता वहानां*) का पानी पिया था, तो ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमी से लेकर पूर्वी समुद्र–तटों तक संपूर्ण दक्कन पर सातवाहन साम्राज्य का आधिपत्य था। विंध्य भारत में अपने व्यापक विजय के दावों के अलावा उसने 'लॉर्ड ऑफ द डेक्कन' (दक्षिणापथपति) की उपाधि ग्रहण की। गौतमीपुत्र के शासनकाल में सातवाहन साम्राज्य नर्मदा के उत्तर में पूर्वी और पश्चिमी मालवा और दक्षिणी गुजरात तक फैला था। पहली बार दक्कन

की एक शक्ति का विस्तार नर्मदा नदी से परे हुआ, जिसे परंपरागत रूप से दक्कन की उत्तरी सीमा के रूप में जाना जाता है।

उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र वासिष्ठिपुत्र पुलुमवी बना जिसने अपने पिता की तरह चौबीस वर्षों (130 से 54 सी.ई.) तक शासन किया। टॉलेमी के '*ज्योगरफी* में उसे सिरो (टो) लेमाइओस (श्री पुलुमावी) के रूप में स्पष्ट पहचान मिली है। उसका राजनीतिक केंद्र बेताना (पैठण) में बना रहा। उसके चार शिलालेखों से पता चलता है किवर्ष 2,6,19 और 22 में उसने वास्तव में नासिक और पुणे के पास कार्ले पर भी सातवाहन नियंत्रण बरकरार रखा। पूर्वी दक्कन में अमरावती से उसके शिलालेख से पता चलता है कि अमरावती क्षेत्र में भी उसका नियंत्रण था। जहाज की आकृति वाला उनका सिक्का पूर्वी दक्कन में परिचालित था, जो पूर्वी तट पर सातवाहन साम्राज्य के आधिपत्य का संकेत है।

रुद्रदमन से मिली करारी हार से हुई भारी क्षति के बावजूदसातवाहन किसी तरह नासिक और पश्चिमी दक्कन में अपने प्राथमिक गढ़ पर अपना नियंत्रण बनाए रखने में कामयाब रहे (13वे वर्ष में नासिक और नानाघाट से वशिष्ठिपुत्रसातकर्णी के दो शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं)। सातकर्णी के बाद यज्ञश्री सातकर्णी बाद के सातवाहन साम्राज्य का प्रमुख राजा था। शिलालेखों में उसके सत्ताईस वर्षों के लंबे शासनकाल का उल्लेख है, जिसके दौरान सातवाहन के क्षेत्रीय कब्जे में नासिक, पश्चिमी दक्कन, पूर्वी दक्कन और विदर्भ शामिल थे। वह संभवतः

शक्तिशाली सातवाहन शासकों में अंतिम शासक था। उसके उत्तराधिकारियों ने बहुत कम क्षेत्रों पर शासन किया जो आंध्र प्रदेश और कर्नाटक के बेल्लारी क्षेत्र तक सीमित था। उसकेबाद के शासक ज्यादातर चांदी के सिक्कों पर अपनी अर्धमूर्ति के लिए जाने जाते हैं। ऐसे सिक्कों का प्रचलन वशिष्ठिपुत्र पुलुमवी के समय से शुरू हुआ और अंत तक जारी रहा।

वशिष्ठिपुत्र पुलुमवी के सिक्के आंध्र प्रदेश के विभिन्न हिस्सों में पाए गए हैं। अन्य शासक जिनकी अर्ध मूर्ति वाली चांदी के सिक्के पाए गए हैं, वे हैं वसिष्ठिपुत्र सातकर्णी, यज्ञश्री सातकर्णी, वशिष्ठिपुत्र विजया सातकर्णी, वशिष्ठिपुत्र शिवश्री पुलुमवी, वशिष्ठिपुत्र स्कंद सातकर्णी आदि। माधुरीपुत्र पुलुमावी के नाम के कुछ सिक्के भी मिले हैं, जिन्हें बाद का सातवाहन शासक माना जा सकता है। इन सभी शासकों ने शायद बहुत कम समय के लिए शासन किया। इनमें से कुछ बाद के शासकों का उल्लेख पुराणिक राजा–सूचियों में नहीं है और केवल उनके सिक्कों के माध्यम से उन्हें जाना जाता है। बाद के सातवाहन के शासकों द्वारा द्विभाषी आख्यान वाले सिक्के जारी किए गए थे और इन पर राजा का नाम प्राकृत के अलावा दक्षिण भारतीय भाषा में भी उत्कीर्ण किया गया था। दक्कन में सातवाहन साम्राज्य का अंत सम्भवतः लगभग 225 सी.ई. में हुआ। इसके बाद दक्कन में वकाटक , मैसूर में कदंब, महाराष्ट्र में अभिरस और आंध्र में इक्ष्वाकु शासकों का शासन प्रमुख रूपो से चला।

जहाज–रूपांकनों (एकल या दोहरे मस्तूल) वाले सिक्कों की नियमित रूप से जारी करना सातवाहन के वाणिज्यिक आदान प्रदान को दर्शाता है। उनकी महाकाव्यों के महानायकों के साथ तुलना की गई है औरउन्हें महान शीषर्को से नवाजा गया है।राजतंत्र होने के नाते, शासकों ने ब्राह्मणवादी मानदंडों को राज्य की विचारधारा के रूप में अपनाया और वैदिक यज्ञों जैसे अश्वमेध, वाजपेय और राजसूय यज्ञ का आयोजन किया। गौतमीपुत्र सातकर्णी को एक अद्वितीय ब्राह्मण (*एक्का बाम्हान*) के रूप में महिमामंडित किया गया है जिसने चार वर्णों (*विनिवतित चुतुवनसम्कारा*) के बीच सम्बंध स्थापित करने पर रोक लगा दिया था। सातवाहन राज्य में नयनिका और गौतमी बालाश्री नामक रानियों को पहचान मिली। रानी नयनिका का बेटा जब नाबालिग था तब वास्तव में उसने प्रतिनिधि के रूप में अपनी सेवा दी थी। यहां तक कि उस समय जारी सिक्कों के एक तरफ उसका नाम तथा दूसरी तरफ उसके पति सातकर्णी का नाम अंकित किया गया था।

2.5.4 प्रशासन

ऐसा प्रतीत होता है कि इंडो–ग्रीक, सातवाहनों, क्षहर्तो और कार्दमक शासकों ने विविध और बड़ी सेनाएँ खड़ी कर रखी थी ताकि आक्रमणकारियों को मुँहतोड जवाब दिया जा सके। ग्रीक शासकों ने अलग–अलग क्षेत्रों में शासन किया और उन्होंने संयुक्त शासकों की तरह राज किया। उसका क्षेत्रीय विस्तार उसकी सैन्य शक्ति पर आधारित था। पैदल सेना के अलावा सातवाहनों के पास घुड़सवार सेना, रथ और हाथी बल थे। सेना

के कमांडर को *महासेनापति* का दर्जा दिया गया था, जो अक्सर नागरिक कार्यों के निर्वहन में अपना योगदान देता था। सिविल और सैन्य अधिकारियों का रखरखाव निश्चित रूप से कृषि संसाधनों पर निर्भर करता था, किंतु शासन द्वारा नमक उत्पादन (*लोनखादकम*) सहित शिल्प (*करुकरा*) पर भी उपकर वसूल किया जाता था। प्रतीत होता है कि विविध राजस्व वसूली एक जटिल राजतंत्रात्मक राजनीति के उदय का संकेत थी और शक तथा सातवाहनों ने अपने शासन के दौरान विविध प्रकार के कर लगाए। हम पाते हैं कि शक और सातवाहन दोनों के लिए, नासिक, जुन्नर, और कार्ले पर नियंत्रण महत्वपूर्ण था क्योंकि इनकेमार्ग उत्तरी कोंकण के बंदरगाहों के भीतरी इलाकों तक जाते थे। शक–सातवाहन संघर्ष या दो शाही घरानों के बीच लंबे समय तक चला संघर्ष इस अवधि के इतिहास की प्रमुखता है।

क्षत्रपों के अलावा, सातवाहन राजाओं काउडिशा या कलिंग के राजा खारवेल के साथ भी संघर्ष हुआ था। सातवाहन ने पश्चिम में अपनी सेना भेजी थी और यह कहा जाता है कि सातवाहन सेना को क्षत्रपों और खारवेल से करारी हार मिली थी।

सातवाहनों के स्थानीय प्रमुखों के साथ भी अच्छे सम्बंध थे। उदाहरण के लिए, शिलालेख में महारठियों और महाभोजों के साथ सातवाहनों के विवाह संबंधों का उल्लेख है। वास्तव में, रानी नयनिका स्वयं एक महारठी की बेटी थी। महारठियों को स्वतंत्र दान करने के लिए भी जाना जाता है; उनके अधिकांश शिलालेख कार्ले के आसपास पाए गए हैं। दूसरी ओर, महाभोज के अभिलेख पश्चिमी तट के पास मिले हैं।

बोध प्रश्न–2

1. सातवाहन के इतिहास के पुनर्निर्माण के स्रोतों पर 50 शब्दों में संक्षिप्त नोट लिखें

_____

_____

_____

_____

_____

2. निम्नलिखित कथनों को पढ़ें और सही (✓) या गलत (×) को चिह्नित करें:

क) मेनेंडर बौद्ध धर्म परिवर्तित था। ()

ख) जूनागढ़ शिलालेख संस्कृत में लिखा गया था। ()

ग) क्षत्रप प्रणाली भारत में शकों द्वारा शुरू की गई थी ()

घ) सातवाहनों ने बौद्ध धर्म को अपना राज्य धर्म बनाया। ()

ड़) सातवाहनों की उत्पत्ति और पहचान के बारे में कोई विवाद नहीं है। ()

2.6 सारांश

भारतीय इतिहास में 200 बी.सी.ई. से 200 सी.ई. के बीच की अवधि महत्वपूर्ण है। उत्तर–पश्चिमी, पश्चिमी भारत और दक्कन में कई महत्वपूर्ण राजनेताओं ने शासन किया। विभिन्न राजाओं द्वारा ढाले गए सिक्के, शिलालेख और *पुराण* आदि ग्रंथ इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। वास्तव में, तीस बैक्ट्रियन ग्रीक शासकों की पहचान केवल सिक्कों से हुई है। सिक्कों की प्रकृति, इसके परिचालन के क्षेत्र से विस्तृत व्यापार नेटवर्क का पता चलता है। सातवाहन काल दक्कन के इतिहास में महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सबसे पहला राज्य था जो पहली शताब्दी बी.सी.ई. में विंध्य के दक्षिण में उभरा था।

2.7 शब्दावली

क्षत्रप : सिथियन –पर्थियनों का एक वाइसराय या अधीनस्थ शासक; क्षहर्त और कार्दमक वंश के राजाओं द्वारा ग्रहण की गई उपाधि

महाक्षत्रप : वायसराय, अधीनस्थ शासक; क्षहर्त और कार्दमक वंश के कुछ राजाओं द्वारा धारण की गई एक उपाधि।

ब्राह्मी : एक प्राचीन भारतीय लिपि

अरामिक : एक भाषा और लिपि। अरामिक या उत्तरी सेमेटिक लिपि असीरियन, बेबीलोनियन और आकेमनिड साम्राज्यों की

आधिकारिक लिपि थी; अशोक के शिलालेख भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिमी भाग में इस भाषा और लिपि के उपयोग का संकेत देते हैं।

2.8 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. भाग 2.3 देखें

2. भाग 2.4 देखें

बोध प्रश्न–2

1. उप–भाग 2.5.1 देखें

2. (क) ✓ (ख) ✓ (ग) ✓ (घ) × (ड़) ×

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

बोपाराची, ओसमंड (1991). *मोनाईज़ ग्रीको–बैक्ट्रिएन एट इंडो–ग्रीक्सः कैटलॉग राइसोन*। पैरिसः बिब्लियोथीक नेशनल।

चक्रवर्ती, रणबीर (2017). *एक्सप्लोरिंग अर्ली इंडिया, अपटू ए.डी. 1300.* तीसरा संस्करण, दिल्लीः प्राइमस पब्लिकेशन।

चट्टोपाध्याय, बी. डी. (2003). *स्टडींग अर्ली इंडिया.* नई दिल्लीः पर्मानेंट ब्लैक।

घोष, सुचंद्रा (2017).*फ्रॉम द ऑक्सस टू द इंडसः एक पोलिटिकल एंड कल्चरल हिस्ट्री (300 बी.सी.ई. – 100 बी.सी.ई.).* दिल्लीः प्राईमस बुक्स।

झा, अमितेश्वर और राजगोर, डी. (1992).*स्टडीज इन द कौइनेज़ ऑफ द वेस्टर्न क्षतरपाज़*। नासिकः इंडिन इंस्स्टीटयूट ऑफ न्यूमिस्मैटिक स्टडीज़।

रायचौधरी, एच.सी. (1996).*पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशियंट इंडिया विद ए कमेंट्री बाई बी.एन. मुखर्जी.* 8वां एडीशन। नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

शास्त्री, अजय मित्र (1999). *द ऐज ऑफ द सावहानाज़.* दिल्लीः आर्यन बुक्स इंटरनेशनल।

सिंह, उपिन्दर (2008).*ए हिस्ट्री ऑफ ऐशियंट एंड अर्ली मेडिवल इंडिया.* पियर्सन ऐडुकेशन इंडिया।

थापर, रोमिला (2002).*अर्ली इंडिया, फॉम द ओरिजिन्स टू ए.डी. 1300.* लंदनः पेंन्गुईन बुक्स।

इकाई 3 दक्कन और *तमिलाहम्* में आरंभिक राज्य निर्माण*

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 स्रोत

3.3 राज्य की उत्पत्ति के विषय में

3.4 पूर्ववृत्त

3.5 भौगोलिक पृष्ठभूमि

3.6 सातवाहन वंश के इतिहास की रूपरेखा

3.7 बस्तियों का प्रारूप

3.8 प्रशासन

3.9 समाज

3.10 दक्षिण भारत (*तमिलाहम्*) : क्षेत्र विशेष

3.11 पाँच परिस्थितिकी प्रदेश और जीवन–यापन का तरीका

3.12 राजनीतिक समाज का उद्‌भव

3.13 सारांश

* यह इकाई ई.एच.आई– 02, खंड 7 से ली गई है।

3.14 शब्दावली

3.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.16 संदर्भ ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सातवाहन वंश के विषय में जान सकेंगे जिसने दक्कन में सबसे पहले राज्य की स्थापना की;
- सातवाहनों के अन्तर्गत प्रशासन की प्रकृति समझ सकेंगे; और
- इस समय में समाज में हुए परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

आप यह भी जान सकेंगे कि :

- आरंभिक काल में दक्षिण भारत या तमिलाहम् किन परिस्थितिकी प्रदेशों में बंटा था;
- किस प्रकार जीवन यापन के विभिन्न तरीके एक साथ अस्तित्व में थे और उनमें कैसे आदान–प्रदान होता था;
- किस प्रकार विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र कार्य करते थे; और
- कैसे वे राजनीतिक नियंत्रण के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करते थे।

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने भारतीय उपमहाद्वीप में 200 बी.सी.ई. – 300 सी.ई. के बीच उभरने वाली क्षेत्रीय शक्तियों के बारे में पढ़ा। इस इकाई में आप दक्कन भारत में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे। प्रथम सदी बी.सी.ई. के आस पास दक्कन में जिस

ताकतवर वंश का उदय हुआ वह सातवाहन वंश था। यहाँ पर हम सातवाहनों के अंतर्गत दक्कन की राजनैतिक व सामाजिक व्यवस्था पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

सातवाहनों के अधीन दक्कन में आरंभिक राज्य उत्पत्ति की जानकारी लेने के बाद आप जानेंगे कि इस काल के दौरान तमिल क्षेत्र में उसी प्रकार की स्थिति नहीं थी। इस क्षेत्र में केवल मुख्यातंत्र विद्यमान था, राज्य शक्ति जैसी चीज का नामोनिशान नहीं था। राज्य के लिए एक क्षेत्र विशेष में केंद्रीकृत राजनीतिक शक्ति का होना अनिवार्य माना जाता है। क्षेत्र के विभिन्नसंसाधनों पर नियंत्रण स्थापित होने पर ही किसी राजनीतिक शक्ति का अधिकार कायम होता था। इसके अतिरिक्त राज्य के लिए एक नियमित कराधान व्यवस्था और व्यवस्थित सेना का होना आवश्यक है। इस कराधान औरसेना को व्यवस्थित करने के लिए राज्य के पास नौकरशाही या विभिन्न स्तरों के अधिकारियों का एक दल होना चाहिए। दूसरी तरफ मुखियातंत्र में ऐसी व्यापक व्यवस्था नहीं होती है। मुखियातंत्र वंशानुगत अधिकार पर आधारित एक ऐसा समाज होता है, जिसमें एक मुखिया का शासन होता है। उसके अधिकार क्षेत्र में वे लोग होते हैं जो उसके साथ संबद्ध कबीले के नियमों और सगोत्रता के सूत्र में बंधे होते हैं। मुखिया अपने लोगों के सगोत्रीय संबंधों का संस्थागत रूप होता है। इस प्रकार की व्यवस्था में लोगों से राजस्व के तौर पर नियमित रूप से कर नहीं वसूल किया जाता है, बल्कि स्वेच्छा से लोग समय–समय पर नज़राना दिया करते हैं। इस इकाई में आप विभिन्न प्रकार के मुखियाई अधिकारों और तमिलाहम् में उनके राजनीतिक विकास के स्तर की जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.2 स्रोत

सातवाहन शासकों को दूसरे नाम 'आन्ध्राओं' से भी जाना जाता है। इन राजाओं के नामों की सूची *पुराणों* में भी पायी जाती है। इन सूचियों को ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में दूसरे साक्ष्यों के साथ आलोचनात्मक तुलना किये बिना उपयोग करने में बहुत सी कठिनाइयाँ होती हैं। उदाहरण के तौर पर, विभिन्न *पुराणों* में राजाओं के नाम एवं उनके शासनकाल में काफी अन्तराल है। इससे भी अधिक बड़ी समस्या यह है कि इन राजाओं के विषय में सूचना केवल कल्पित एवं किंवदंतियों में निहित हैं। इसलिए वास्तविकता एवं किंवदंतियों के बीच अन्तर करने के लिए इन स्रोतों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना चाहिए। यदि अन्य स्रोतों जैसे कि सिक्कों व शिलालेखों के साथ *पुराणों* का अध्ययन किया जाये तो वे काफी उपयोगी हैं। सातवाहनों ने काफी बड़ी संख्या में सीसे, चांदी व तांबे के मिश्रित सिक्कों को ढलवाया। उनके चांदी के सिक्कों पर राजा का चित्र एवं नाम खुदा हुआ है। बौद्ध गुफाओं से पत्थर पर खुदे लेख एवं लिपिबद्ध किये दान के विवरण प्राप्त हुए हैं जिनको सातवाहन राजाओं एवं रानियों के साथ–साथ बड़ी संख्या में साधारण लोगों ने बनवाया। इन विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचना का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद सामान्यतः विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि सातवाहनों ने प्रथम बी.सी.ई. के आसपास अपना शासन करना प्रारंभ किया। उनका सबसे प्रारम्भ का साक्ष्य महाराष्ट्र राज्य के नासिक के पास एक गुफा में पत्थर पर उत्कीर्ण लेख के रूप में पाया गया है।

ब्राह्मी लिपि में अंकित सातवाहन सिक्का, पहली शताब्दी बी.सी.ई.। ब्रिट्रिश संग्रहालय। श्रेयः पीएचजी सीओएम।स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स. (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Satavahana1stCenturyBCECoinInscribedInBr hmi(Sataka)Nisa.jpg)।

3.3 राज्य की उत्पत्ति के विषय में

अब हम एक प्रश्न उठाते हैं राज्य क्या है और राज्य की उत्पत्ति ने समाज में कैसे परिवर्तन किये? राज्य की उत्पत्ति के कारणों के विषय में कई मत दिये जाते हैं। राज्य की उत्पत्ति के कारण एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न हैं। कुछ विशेष मामलों में व्यापार के विकास एवं नगरों के फैलाव के कारण राज्य की उत्पत्ति हुई। अन्य दूसरे मतों के अनुसार आबादी के दबाव एवं विजय के कारण उस समय की प्रचलित राजनैतिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ।

सामान्यतः विद्वान लोग इस तथ्य से सहमत हैं कि बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण करने के लिए राज्य एक सक्षम औजार है। एक राज्य भली भांति परिभाषित एक क्षेत्र पर नियंत्रण रखता है और कर तथा राजस्व को एकत्रित करने के लिए एक प्रशासनिक मशीनरी को बनाकर रखता है। वह एक स्थायी सेना को भी रखता है जो कानून एवं व्यवस्था को बनाये रखने में मदद करती है। लेकिन इन सबके साथ–साथ समाज में असमानता एवं वर्ग विभेदन भी बढ़ता है। यहाँ शासक और शासित के मध्य स्पष्ट भेद है। शासनकर्त्ता अपने लाभ एवं उपयोग के लिए समाज के संसाधनों पर नियंत्रण रखते हैं। दूसरी ओर शासित वर्ग शाही परिवार के सदस्यों, राज्य के कुलीनों, बहुत से अधिकारियों के रख–रखाव के लिए आवश्यक धन एवं राजस्व उपलब्ध कराते है। इस प्रकार कबीलाई समाज एवं राज्य समाज में मूलभूत अन्तर राजनीति के नियंत्रण की प्रकृति में निहित है। राज्य व्यवस्था के अंतर्गत विशेषज्ञात्मक प्रशासनिक व्यवस्था शासक एवं शासित को अलग करती है। कबीलाई समाज में सामान्यतः एक कबीले के द्वारा राजनैतिक शक्ति का उपयोग किया जाता है जिसके पास अपने निर्णयों को लागू करने के कोई अधिकार नहीं होते। कबीले की स्थिति सदस्यों की वफादारी पर निर्भर करती है इसलिए अधिकतर निर्णयों को एक साथ ही करना होता है।

3.4 पूर्ववृत्त

आपने पढ़ा है कि दूसरी सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. में पश्चिम दक्कन में ताम्रपाषाण बस्तियों का प्रसार हुआ। बाद में प्रथम सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. के द्वितीय भाग में लोहे का प्रयोग करने वाली जातियों ने पूर्वी दक्कन पर अपना अधिकार कर लिया। ये मुख्य रूप से

ग्रामीण बस्तियाँ थीं और जिनमें बहुत बड़ी तादाद में कबीलाई लोग वास करते थे। प्रारंभिक संस्कृत साहित्य विशेषकर महाकाव्यों एवं *पुराणों* में आन्ध्र, सबर, पुलिन्द आदि जैसी कबीलाई जातियों का वर्णन है जो दक्कन में रहती थी। इनमें से कई जातियों के दक्कन नामों को अशोक शिलालेखों में भी उद्धृत किया गया है। परन्तु इनमें से अधिक सन्दर्भ सामान्य प्रकृति के हैं और इनके आधार पर उस निश्चित क्षेत्र को परिभाषित करना कठिन है जहाँदक्कन में वे रहते थे।

दक्कन में परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रारंभ शायद मौर्यों के प्रसार के साथ हुआ। मौर्य मुख्यतः दक्कन प्रायद्वीप के खनिज संसाधनों को शोषित करने में रुचि रखते थे। आधुनिक कर्नाटक और आंध्र प्रदेश की खानों से प्राप्त किये गये सोने, हीरे एवं रत्नों को भूमि एवं समुद्र के किनारे वाले मार्गों के द्वारा उत्तर भारत में मगध को भेजा जाता था। इन मार्गों पर कई बाजार केंद्र विकसित हुए जैसे कि आंध्र प्रदेश के वर्तमान गुंटूर जिले में कृष्णा नदी के किनारे धरनिकोटा और महाराष्ट्र के सतारा जिले में करद्। अनेक स्थानोंके इर्द–गिर्द महारठी के नाम से जाने वाले अनेक सरदार महत्त्वपूर्ण हो गये। लेकिन ये स्थानीय महारठी सरदार सातवाहनों के अन्तर्गत ही थे तथा सातवाहनों एवं महारठियों के बीच वैवाहिक संबंध थे और इस प्रकार सातवाहनों के रूप में दक्कन में प्रथम राज्य की उत्पत्ति हुई।

3.5 भौगोलिक पृष्ठभूमि

दक्कन प्रायद्वीप पठारीय क्षेत्र और पूर्व एवं पश्चिमी किनारों के पर्वतीय श्रंखलाओं के द्वारा तटीय मैदानों में विभाजित है। पश्चिम के कोंकण तटीय क्षेत्र की अपेक्षा आंध्र का तटीय क्षेत्र काफी चौड़ा है। इस पठारी क्षेत्र का सामान्यतः ढलान पश्चिम क्षेत्र से पूर्व की ओर है तथा इसके कारणवश महानदी, गोदावरी और कृष्णा जैसी नदियों का बहाव पूर्व दिशा की ओर है जिससे कि वे बंगाल की खाड़ी में मिल जाती हैं। नदियों के डेल्टा एवं घाटियों में बस्तियों के लिए काफी उत्पादक भूमि उपलब्ध होती है। दक्कन की एक भौगोलिक विशेषता शायद इस तथ्य में निहित है कि पठार के पर्वतीय क्षेत्रों को केवल दर्रों के द्वारा ही पार किया जा सकता है।

3.6 सातवाहन वंश के इतिहास की रूपरेखा

पुराणों के अनुसार सिमुक सातवाहन ने सातवाहन शक्ति की स्थापना की। उसके भाई कन्हा या कृष्ण के विषय में हमें जानकारी नासिक के लेख से प्राप्त होती है। वंश के अनेक शासकों का विवरण रानी नागनिका के नानाघाट शिलालेख से भी प्राप्त होता है जो राजा सातकर्णी की विधवा थी तथा उसने वैदिक बलि यज्ञों का आयोजन किया था। नानाघाट एक काफी बड़ा दर्रा था जो जुन्नर को समुद्र तट से जोड़ता था और इस दर्रे के ऊपर एक गुफा है जिसमें सातवाहन शासकों की आकृतियां खुदी हुयी है। दुर्भाग्यवश ये मूर्तियाँ अब पूर्णतः नष्ट हो चुकी हैं और जो अवशेष बचे हैं वे मस्तक के ऊपर नामपत्र पर मात्र नाम देते है।

सातकर्णी के बाद गौतमीपुत्र सातकर्णी के शासनकाल तक जिन शासकों ने शासन किया उनके विषय में हमें काफी कम जानकारी है। नासिक में एक गुफा के प्रवेश द्वार पर गौतमीपुत्र सातकर्णी की माता का एक लेख खुदा हुआ है जिससे उसके राज्य के फैलाव एवं उसके शासन काल की घटनाओं का विवरण प्राप्त होता है। गौतमीपुत्र सातकर्णी की मुख्य उपलब्धि यह है कि उसने पश्चिम दक्कन एवं गुजरात के क्षत्रपों को पराजित किया था। उसकी माता के इस लेख में इस तथ्य की प्रशंसा की गई है कि उसने पुनः सातवाहन गौरव को स्थापित किया था और इस तथ्य की पुष्टि मुद्रा साक्ष्यों से भी होती है। अपनी जीत के बाद गौतमीपुत्र सातकर्णी ने अपने खुद के लेख और प्रतीकों के साथ क्षत्रप नाहपण के चांदी के सिक्कों का प्रतिकार किया। *पेरिप्लस ऑफ दी ऐरिथ्रियन सी* के अनुसार सातवाहनों एवं क्षत्रपों के मध्य चलने वाले संघर्ष के कारण मुम्बई के पास स्थित बन्दरगाह में ठहरे हुए ग्रीक जहाजों को सुरक्षा के साथ भड़ौच स्थित बन्दरगाह पर भेजा गया। शायद अति आवश्यक विदेशी व्यापार को लेकर इन दोनों के बीच संघर्ष था। ऐसा प्रतीत होता है कि गौतमीपुत्र सातकर्णी शासनकाल में ही अच्छी प्रकार से सातवाहनों का शासन आंध्र प्रदेश तक फैल गया था।

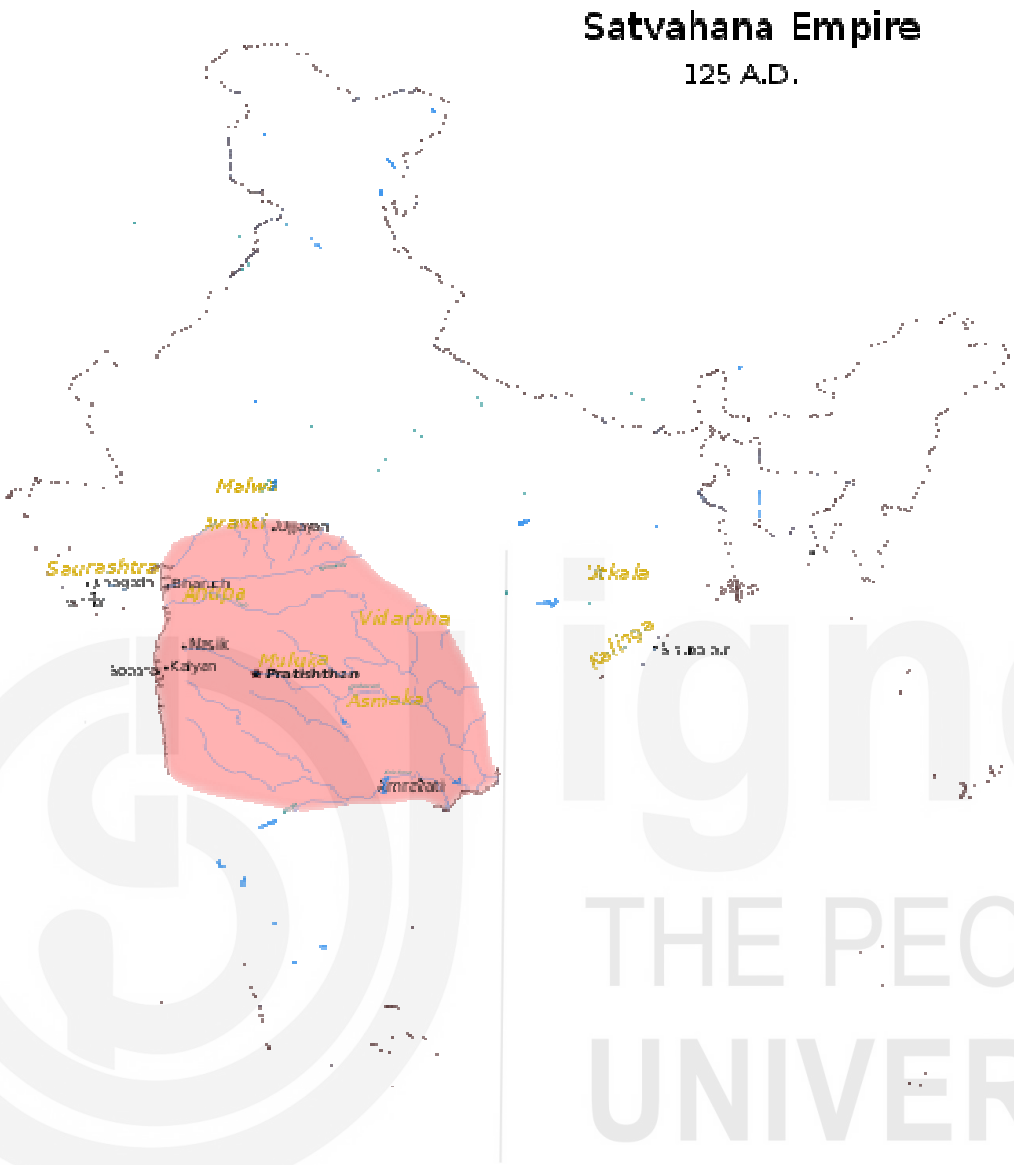

गौतमीपुत्र सातकर्णी के अंतर्गत सातवाहन साम्राज्य का विस्तार।स्रोत : *द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपल,* वॉल्यूम–11। श्रेय : चेतनव। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स.

(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Satvahana.svg)।

गौतमीपुत्र सातकर्णी के बाद उसका पुत्र पुलुमावि शासक हुआ और इस समय तक सातवाहनों में अपनी शक्ति का फैलाव पूर्वी दक्कन तक कर लिया था। हमें पहली बार

सातवाहनों के लेख पश्चिमी दक्कन से बाहर अमरावती में प्राप्त होते हैं। यजनश्रीसातकर्णी अंतिम महत्त्वपूर्ण सातवाहन शासक था और उसके बाद उनके साम्राज्य का विभाजन उसके उत्तराधिकारियों के बीच हो गया जिनकी एक शाखा ने आंध्र क्षेत्र में शासन किया। बाद के सातवाहन शासकों ने द्विभाषा में लिखे हुए सिक्कों को जारी किया जिसमें राजा का नाम प्राकृत भाषा में लिखा हुआ है और मुद्रा लेख किसी एक दक्षिणी भाषा में। इस भाषा को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ का मानना है कि यह तमिल में हैं तो कुछ के अनुसारयह तेलगू में हैं।

क्षत्रपों के साथ–साथ प्रारम्भिक सातवाहन शासक को उडीशा का कलिंग की खारवेल शक्ति के साथ संघर्ष करना पड़ा। खारवेल ने प्रथम शताब्दी बी.सी.ई में कलिंग में अपनी शक्ति की स्थापना की थी। सातवाहन शासक सातकर्णी की परवाह किये बगैर पश्चिम की ओर अपनी सेना को भेजा। ऐसा कहा जाता है कि सातवाहन शासक को क्षत्रपों और खारवेल नरेश के हाथों पराजय भोगनी पड़ी। इसको केवल गौतमीपुत्र सातकर्णी ने पुनः स्थापित किया।

सातवाहन इतिहास की यह भी एक समस्या है कि हमें दक्कन के उन क्षेत्रों के बारे में जानकारी नहीं है जहाँ छोटे सरदार विद्यमान थे। उदाहरण के लिए एक क्षेत्र में सातवाहनों का महारठी एवं महाभोजों के बीच वैवाहिक संबंधों का संदर्भ मिलता है – वास्तव में नानाघाट के अभिलेख में एक महारठी सरदार एक राजकुमार पर अग्रता प्राप्त कर लेता है और नायनिका रानी स्वयं एक महारठी सरदार की पुत्री थी।

महारठियों ने भी स्वयं स्वतंत्र रूप से दान किये – उनके अधिकतर अभिलेख कार्ले के आस–पास प्राप्त हुए हैं जबकि महाभोजियों के अधिकतर साक्ष्य पश्चिमी तट के क्षेत्र में मिलते हैं।

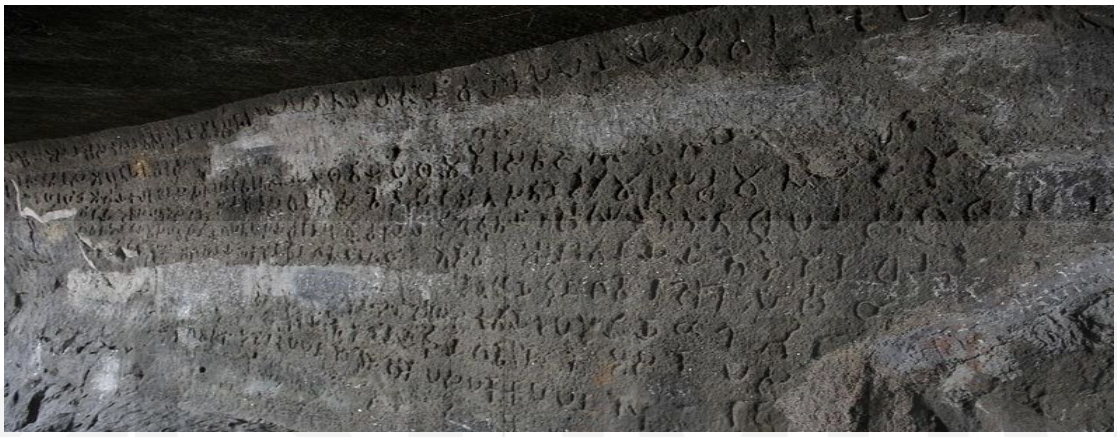

रानी नायनिका/नगनिका का लगभग दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. का नानाघाट गूहा अभिलेख। श्रेय : ऐम्रोय सेस्पेआ।स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स. (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Complete_view_of_Inscription_in_cave_at_Naneghat.jpg)।

3.7 बस्तियों का प्रारूप

उनके प्रारंभिक अभिलेखों के प्राप्ति स्थान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सातवाहनों ने अपने शासन का प्रारंभ पश्चिमी दक्कन से किया। गौतमीपुत्र सातकर्णी की माता का दूसरी सदी बी.सी.ई. का नासिक अभिलेख सातवाहनों के साम्राज्य की सूचना देता है। इस शिलालेख में यह भी संदर्भ है कि पश्चिमी एवं पूर्वी दोनों तट

गौतमीपुत्र सातकर्णी के साम्राज्य के भाग थे जिसका तात्पर्य यह हुआ कि इस समय में सातवाहन शासन सम्पूर्ण दक्कन प्रायद्वीप पर था और यह *अहार* या जिलों में विभाजित था। इस शिलालेख में हमें पाँच *अहार* या जिलों के नाम इस प्रकार मिलते हैं –(1) नासिक के आस–पास केंद्रित गोवर्धन–*अहार,* (2) पश्चिमी तट पर सोपारका–*अहार,* (3) पुणे एवं सतारा जिलों के पर्वतीय क्षेत्रों को मिलाकर ममला–*अहार,* (4) *सातवाहनिहारा* कर्नाटक के जिले बैल्लारी में, और (5) कपूरशरा शायद गुजरात में था।

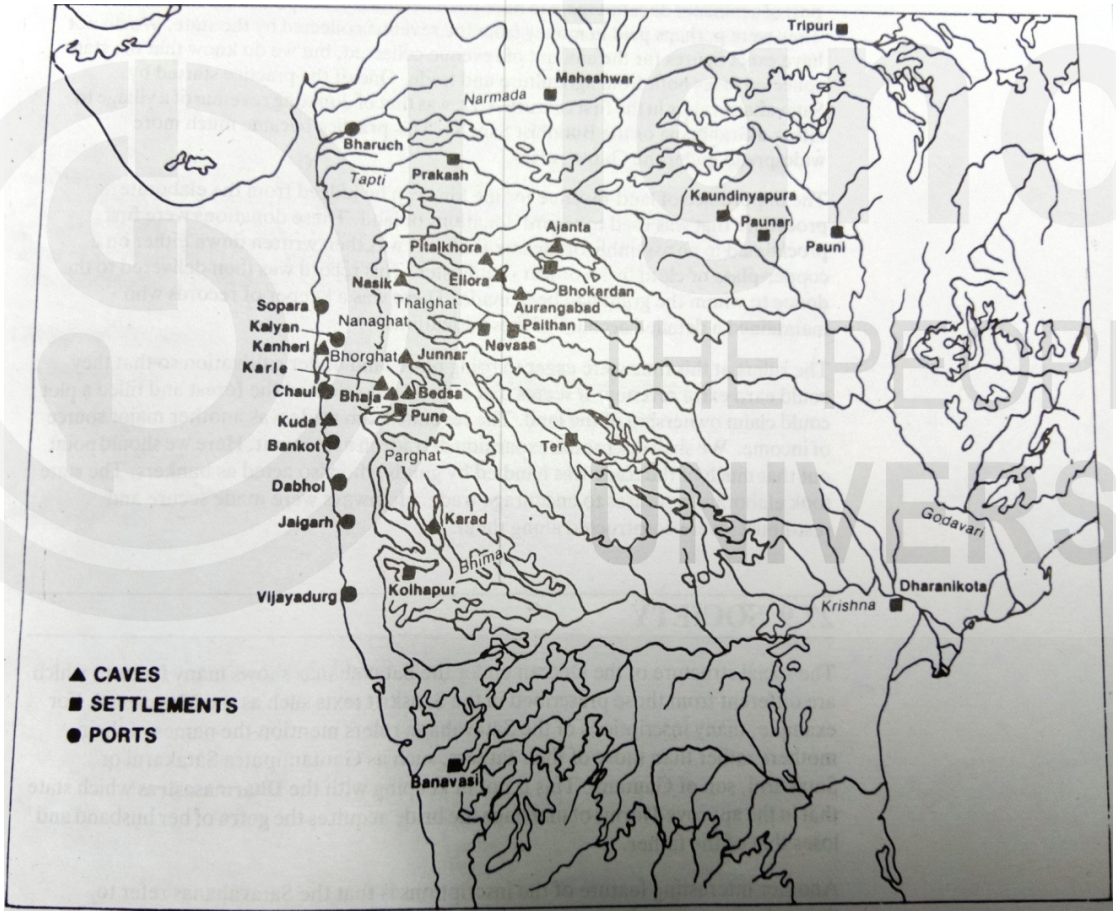

सातवाहन बस्तियाँ

स्रोत : ई.एच.आई.–02, खण्ड–7, इकाई–27

पश्चिमी तट

पश्चिमी तट पर भड़ौच, कल्याण, सोपारा और चौल एवं कोंकण तट पर दक्षिण में अनेक बन्दरगाहों की शृंखला थी। इन बंदरगाहों पर विक्रय वस्तओं को देश के आंतरिक केंद्रों से पश्चिमी तट के दर्रों के बीच से लाया जाता था। प्रथम सदी सी.ई. का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ, *पेरिप्लस ऑफ दि ऐरिथरियन सी* जिसकी रचना ग्रीक के एक गुमनाम नाविक ने की थी, इस समय की यात्रा एवं व्यापार की प्रकृति को समझने में बड़ी मदद करता है। कैम्बे की खाड़ी में भडौच की ओर जाने वाले ऐसे रास्तों का चित्रण यह ग्रंथ करता है जो काफी संकरी जगहों से होकर गुजरते थे। इसी कारणवश जिले के शाही मछुवारे इन जहाजों को स्वयं चलाकर बंदरगाह के अन्दर ले जाते थे। हमने पहले ही इस तथ्य का वर्णन किया है कि क्षत्रपों एवं सातवाहनों के बीच सामुद्रिक व्यापार पर नियंत्रण करने और भड़ौच तथा कल्याण के बंदरगाहों के मध्य की स्पर्धा को लेकर युद्ध हुआ था।

समुद्र तट से दूर की बस्तियाँ

पश्चिमी तटों से दूर मुख्य भूभाग की ओर कार्ले की 30 किमी. की परिधि के अंतर्गत जुन्नर व नासिक के आस–पास और आगे दक्षिण में कृष्णा के ऊपरी डेल्टा में कोल्हापुर के इर्द–गिर्द ये बस्तियाँ केंद्रित थीं। यह माना जाता है कि ये सभी क्षेत्र कृषि के लिए काफी संपन्न एवं उपजाऊ थे जिससे कि ये पश्चिमी तट पर स्थित बंदरगाहों

के लिए संसाधन का आधार उपलब्ध कराते थे। इन बंदरगाहों के माध्यम से भू–मध्य सागर क्षेत्र एवं भारत के बीच प्रथम शताब्दी सी.ई. में व्यापार किया जाता था और इनका सम्पर्क भू–मार्ग के द्वारा दक्कन प्रायद्वीप के पूर्वी तट एवं आंध्र प्रदेश के व्यापारिक केंद्रों के साथ भी था। यह भड़ौच के पैंठन व टेर एवं पूर्व को आगे की ओर आंध्र के केंद्रों तक जाता था। पैंठन का प्राचीन क्षेत्र गोदावरी के इर्द–गिद्र 4 किमी. क्षेत्र में फैला हुआ था और जब कभी भी इस स्थल की खुदाई की गई तो वहाँ से बहुत सी प्राचीन वस्तुएँ जैसे कि सिक्के, सांचे ओर पकी हुई मिट्टी के पुराणषेश एवं बर्तन प्राप्त हुए हैं। परंतु सातवाहनों के निर्माण संबंधी अवशेषों के विषय में बहुत कम ज्ञान है।

टेर दक्कन के कपास उत्पादक क्षेत्र में स्थित है। इस स्थल का उत्खनन करने पर यहाँ से लकड़ी के परिकोटे और रंगने वाले बर्तन प्राप्त हुए हैं जिससे ऐसा मालूम पड़ता है कि यहाँ पर कपड़ों की रंगाई का भी कार्य होता था। टेर को इसलिए भी भली भांति जाना जाता है कि वहाँ पर पायी जाने वाली हाथी दांत की बनी सुन्दर तस्वीर पोम्पेई से पायी जाने वाली प्रतिरूप के बहुत समान है। इस स्थल का सबसे महत्त्वपूर्ण अवशेष वह है जो ईंटों से निर्मित चैत्य है और जो बाद में ब्राह्मणों के मंदिर के रूप में परिवर्तित हो गया।

दक्कन का दूसरा मार्ग वह था जो उज्जैन से नर्मदा पर स्थित महेश्वर से जुड़ा था तथा अजन्ता एवं पितलखोरा की गुफाओं से गुजरता हुआ भोकरदन और पैंठन को

जोड़ता था। भोकरदन मनके बनाने का काफी बड़ा केंद्र था तथा उसको सीप एवं हाथी दांत के काम के लिए भी जाना जाता था। भोकरदन के निवासियों या भोगवर्धनियों ने मध्य भारत में सांची एवं भारहुत की गुफाओं में अंकित लेखों के अनुसार बौद्धों को दान दिया।

दक्षिण में आगे की ओर कृष्णा नदी की ऊपरी घाटी में करद नाम का एक और अन्य नगर था जिसका वर्णन बौद्ध अभिलेखों में हुआ है। इसी क्षेत्र में कोल्हापुर भी स्थित था। इस नगर के पश्चिमी भाग से तांबे की बनी वस्तुओं का ढेर प्राप्त हुआ है। इनमें से कुछ जैसे पोसाईडन की मूर्ति का आयात किया गया जबकि गाड़ियाँ एवं तांबे की वस्तुऐं स्थानीय स्तर पर निर्मित की गई थीं। पास के जिले बेलगाँव में वादगाँव–माधवपुर के प्राचीन स्थल हैं जो बेलगाँव का एक उपनगर था तथा जिसकी खुदाई किये जाने पर बहुत बड़ी संख्या में सिक्के एवं दूसरी प्राचीन वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ से जब दक्षिण में आगे की ओर बढ़ते हैं तो बनवासी का स्थल है जहाँ से सातवाहनों का एक शिलालेख मिला है। यह संभवतः एक किलेबन्द बस्ती थी क्योंकि यहाँ पर एक किले की दीवार एवं खाई के चिन्ह मिले हैं।

प्रायद्वीप के पार दक्कन से गुजरते मार्ग पश्चिमी दक्कन में कृष्णा नदी के नीचे की घाटी में अमरावती जैसे स्थलों से जुड़े थे और आंध्र प्रदेश के करीमनगर तक जाते थे। करीमनगर क्षेत्र में भरपूर रूप से फैले हुए बहुत से प्रारंभिक ऐतिहासिक स्थल हैं जिनमें से हैदराबाद से उत्तर पश्चिम की ओर लगभग 70 किमी. दूर कोंडापुर के नाम से एक

महत्त्वपूर्ण स्थल है। इस स्थल का उत्खनन करने पर पर्याप्त मात्रा में सिक्के, पकी मिट्टी की वस्तुएँ एवं बहुत से आकार की ईंटें मिली हैं जो गारा चूना में लगी हैं। पेद्दा–बंकुर आजकल एक छोटा सा गाँव है परन्तु सातवाहन शासनकाल में एक महत्त्वपूर्ण बस्ती थी जो 30 हैक्टेयर क्षेत्र में फैली थी। पेद्दा–बंकूर से लगभग 10 किमी. दूर शूलि कट्टा नाम का स्थल किलेबंद के रूप में था। यह एक कच्ची दीवार से घिरा था और इस स्थल का बहुत सा निर्माण ईंटों का है जिसकी अभी तक खुदाई नहीं की गई है। दूसरी बड़ी बस्ती कोटालिंगल थी जो सातवाहन शासन काल से पूर्व की है क्योंकि अभी हाल में प्राप्त वहाँ से सिक्के इसका प्रमाण हैं। सातवाहन कालीन बस्तियों की कच्ची दीवार से किलेबन्दी की गई और ईंटों की विस्तृत संरचनाओं के अवशेष मिले हैं। उत्खनन स्थलों से बड़ी मात्रा में लोहे कीतलछट्ट एवं कच्ची धातु प्राप्त हुए हैं। करीमनगर क्षेत्र से रास्ता प्रारम्भ होकर नीचे कृष्णा घाटी में शाखाओं में विभाजित हो जाता था जहाँ पर प्रारंभिक ऐतिहासिक बस्तियाँ केंद्रित हैं। इनमें से अमरावती और धरनिकोटा विशेष रूप से मुख्य हैं जो कृष्णा नदी के दोनों किनारों पर बसे हैं। धरनिकोटा नदी से नौ परिवहन प्रणाली के रास्ते से जुड़ा हुआ था। इस स्थल पर प्रारंभिक निर्माण कार्य लकड़ी के घाट का था और बाद में जिसका स्थान ईंटों के निर्माण ने ले लिया। परन्तु नाव चलाने वाले स्थान पर रेत भर जाने के कारण चौथी सदी सी.ई. में इस स्थल का परित्याग कर दिया गया। प्रायद्वीप के पार जाने वाले मार्गों के अलावा एक और मार्ग विदर्भ होकर मध्य भारत को जाता था। उस काल के विदर्भ में पौनार, पौनि, मंढल, भटकूली और अढ़म बस्तियाँ थीं।

सातवाहन वंश के इतिहास की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इसी काल में दक्कन में किलेबन्द बस्तियों का विकास हुआ और उत्खनन से हमें जो प्रमाण उपलब्ध हुए हैं उनसे स्पष्ट है कि निर्माण की गुणवत्ता में काफी सुधार हुआ। किलेबन्दी एवं अन्य निर्माण कार्यों के लिए ईंट का काफी प्रयोग होने लगा। फर्शों को ठोस कूटी हुयी मिट्टी से बनाया जाने लगा। छत के निचले भाग को लकड़ी के खम्भों के सहारे एवं ऊपर से खपरों की मदद से बनाया जाता था।

प्राचीन काल में जिन मार्गों का उपयोग किया गया वर्तमान रेलवे लाइन भी उन्हीं मार्गों पर बिछायी गई हैं। भोरघाट केवल एक मात्र ऐसा दर्रा है जो पश्चिमी तटों को पार करते हुए पुणे एवं मुम्बई को जोड़ता है तथा जिस पर प्रारंभिक बौद्ध गुफाएँ जैसे कि शैलरवाडी, बेडसा, भाजा, कार्ले, अम्विाले, कोंडाने पड़ते हैं।

3.8 प्रशासन

सातवाहन शासकों का प्रशासन मौर्य प्रशासन की अपेक्षा सरल था। शिलालेखों से ऐसे कई मंत्रियों का विवरण मिलता है जिन पर विभिन्न कार्यों को पूरा करने का उत्तरदायित्व था। अन्य कार्यों के साथ–साथ वे कोषाधिकारी एवं भूमि संबंधी दस्तावेजों को रखने का भी कार्य करते थे। मंत्रियों की संख्या की वास्तविक जानकारी नहीं मिलती। इन मंत्रियों की नियुक्ति प्रत्यक्ष रूप से राजा के द्वारा की जाती थी और मंत्री का पद पैत्रक नहीं होता था अर्थात् पिता के स्थान पर पुत्र मंत्री नहीं बनता था। उनको राज्य द्वारा एकत्रित किये गये राजस्व से धन दिया जाता था। हमारे पास

इसकी कोई निश्चित संख्या नहीं है कि कितना राजस्व एकत्रित किया जाता था लेकिन हम यह जानते हैं कि कर को व्यापार एवं कृषि दोनों से एकत्रित किया जाता था। सातवाहन शासकों ने प्रथम शताब्दी बी.सी.ई. में जिस प्रथा का प्रारंभ किया वह यह थी किसी एक गाँव से प्राप्त किये गये राजस्व को ब्राह्मण या बौद्ध संघ को दान के रूप में दे देना। इस प्रथा का गुप्त शासकों के द्वारा व्यापक रूप से प्रयोग किया गया।

राजा के लिए भू–राजस्व के महत्त्व को इस नीति की स्पष्टता से अनुमानित किया जा सकता है कि भूमि के दान को प्रमाणित किया जाता था। इन दोनों को प्रथम बार किसी सभा या *निगम सभा* के बीच घोषित किया जाता था। तब इसको किसी तांबे की प्लेट या कपड़े पर किसी अधिकारी या मंत्री के द्वारा लिखा जाता था। फिर इसको दान प्राप्त कर्ता या जिसको भूमि का अनुदान किया जाता था, दिया जाता था। दस्तावेजों को सुरक्षित रखने वाला एक अधिकारी था जो इस विस्तृत लेखे–जोखे को संभाल कर रखता था।

इस काल के शासक अधिक से अधिक भूमि कृषि योग्य बनाने के लिए उत्सुक रहते थे जिससे कि वे अतिरिक्त राजस्व प्राप्त कर सकें। ऐसा प्रतीत होता है कि जो जंगल को साफ करता था एवं उस पर खेती करता था और वह उस भूमि पर स्वामित्व का दावा प्रस्तुत कर सकता था। व्यापार से राजस्व प्राप्त करना राजस्व की आमदनी का एक दूसरा बड़ा स्रोत था। अधिकतम व्यापार पर नियंत्रण श्रेणियों का था जो बैंक का भी कार्य करती थी। व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए राजा विशेष कदम उठाता था।

दूरस्थ व्यापार मार्गों को सुरक्षित बनाया गया था और उनके किनारे आराम गृहों का निर्माण भी किया गया।

3.9 समाज

दक्कन में सातवाहन शासकों के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था की बहुत सी विशेषतायें उनसे भिन्न थीं जिनका विवरण संस्कृत ग्रंथों जैसे कि *मनुस्मृति* में हुआ है। उदाहरणार्थ, सातवाहन शासकों के बहुत से शिलालेखों में पिता के नाम के स्थान पर माता के नाम का उल्लेख हुआ है, जैसे कि गौतमीपुत्र सातकर्णी (सातकर्णी गौतमी का पुत्र)। यह *धर्मशास्त्रों* की उस परम्परा के साथ मेल नहीं खाता जिसके अनुसार मान्यता प्राप्त विवाह के बाद पत्नी के पिता का गोत्र लुप्त हो जाता है और वह पति के गोत्र को धारण करती है।

इन शिलालेखों में एक दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि सातवाहन स्वयं को ऐसे अनोखे ब्राह्मणों के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने क्षत्रियों के अभिमान को कुचल दिया। परन्तु ब्राह्मणिक ग्रंथों के अनुसार केवल क्षत्रियों को ही शासन करने का अधिकार था। ये शिलालेख इसलिए भी उपयोगी हैं कि आबादी के विभिन्न वर्गों द्वारा दिये गये भू–दान के प्रमाण इनमें उल्लेखित हैं जिससे कि समाज के कुछ विशेष वर्गों की सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है। दान करने वालों में व्यापारियों एवं सौदागरों का मुख्य रूप से संदर्भ आया है, परन्तु लुहारों, मालियों एवं मछुवारों के नामों का उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण है। इनमें कोई संदेह नहीं कि इन कारीगरों एवं दस्तकारों को

निश्चित रूप से दूरस्थ व्यापार से लाभ हुआ था। पर विशेष उल्लेखनीय यह है कि इन लोगों ने अपने नामों के साथ अपने व्यवसायों का उल्लेख किया है न कि अपनी जाति का। हमने पहले की इकाई में उद्धृत किया था कि बौद्ध ग्रंथों में समाज के विभाजन का विवरण ब्राह्मणिक ग्रंथों के विवरण में भिन्न है। यहाँ पर भिन्नता कार्य एवं दस्तकारिता पर आधारित थी और अधिकतर लोगों को उनके व्यवसाय के आधार पर जाना जाता था न कि जाति के आधार पर।

दान कर्ताओं की एक और श्रेणी थी जिनको *यवनों* के नाम से या विदेशियों के रूप में जाना जाता हैं। यवन शब्द का प्रयोग अपने मूल शब्द में आयोनियन यूनानियों से किया जाता था किन्तु प्रथम सदी सी.ई. के आसपास इस शब्द का प्रयोग बिना किसी भेदभाव के विदेशियों के लिये किया जाने लगा। बहुत से यवनों ने प्राकृत नामों को धारण किया और बौद्ध भिक्षुओं को दान दिये। महिलायें स्वतंत्र रूप से अपने आप या अपने पतियों या बेटों के साथ दान देती थीं। सातवाहन रानियों में से नयनिका नाम की एक रानी ने वैदिक बलि अनुष्ठानों का आयोजन किया और ब्राह्मणों तथा बौद्ध भिक्षुओं को उपहार दान दिये।

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि दक्कन में समाज का संचालन जैसा कि इस काल के प्रमाणों से भी जाना जाता है, ब्राह्मणिक ग्रंथों में दिये गये नियमों के अनुसार नहीं होता था। इस प्रकार प्राचीन सामाजिक संरचना का पुनर्निर्धारण करते समय ग्रंथों के संदर्भों

का हमें ध्यानपूर्वक विश्लेषण करना चाहिए तथा उनके तथ्यों की तुलना अन्य दूसरे स्रोतों जैसे कि शिलालेखों एवं पुरातात्विक तथ्यों के साथ करनी चाहिए।

जिन बौद्ध मठों का विवरण इस काल के स्रोतों में हुआ है इससे स्पष्ट है कि उनके व्यवहार एवं जीवन में बुद्ध के समय से काफी परिवर्तन हो चुका था। प्रारंभ में बौद्ध भिक्षुओं को कुछ ही व्यक्तिगत सामान रखने का अधिकार था। ये सामान कुछ ढीले–ढाले वस्त्रों एवं भिक्षा के पात्रों तक सीमित थे। परन्तु धीरे–धीरे बौद्ध संघ की सदस्यता का प्रभाव बढ़ता गया। हम देख चुके हैं कि सातवाहन राजाओं ने काफी बड़ी मात्रा में बौद्ध भिक्षुओं को धन एवं भूमि दान में दिये। जिसके कारण संघ की सम्पत्ति में और वृद्धि हुई। इस काल के हमें कुछ ऐसे विवरण भी प्राप्त हुए हैं जिनके अनुसार बौद्ध भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों ने स्वयं भी दान दिये।

बोध प्रश्न–1

1 सातवाहन काल के दौरान समाज की कुछ विशेषताओं की चर्चा कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

2 इस काल में अंतर्देशीय व्यापारिक मार्गों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

3.10 दक्षिण भारत (*तमिलाहम्*) :क्षेत्र विशेष

प्राचीन*तमिलाहम्* के बंदरगाह। स्रोत

:http://www2.demis.nl/mapserver/mapper.asp |श्रेय : लोटलिला. फोटो श्रेय :

विकिमीडिया कॉमन्स.

(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ancient_tamilakam_ports.png) ।

वेंकटम पहाड़ियों और कन्याकुमारी के बीच के भू–क्षेत्र को तमिलाहम्या तमिलाकम् कहते हैं। इसके अंतर्गत सम्पूर्ण आधुनिक तमिलनाडु और केरल आ जाते हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की भौगोलिक पारिस्थितिकी तथा जलवायु पाई जाती है। यहाँ वनों के आच्छादित पहाड़ियाँ, हरे मैदान, चरागाह, शुष्क प्रदेश, नम भूमि और लम्बे समुद्री तट भी हैं। तीन प्रमुख मुखियातंत्रों चेर, चोल और पांड्यों का भीतरी भू–भाग के साथ–साथ समुद्र तट पर भी नियंत्रण था। चेरों का भीतरी भू–भाग में करूर पश्चिमी तट पर स्थित प्रसिद्ध प्राचीन बंदरगाह मुचरिस पर अधिकार था। भीतरी भू–क्षेत्र में उराईजूर पर और कोरोमंडल तट में पुहार पर चोलों का आधिपत्य था। इसी प्रकार पांड्यों का भू–क्षेत्रीय मुख्यालय मदुरई और तटीय मुख्यालय कोरकर था। ये इस क्षेत्र के प्रमुख राजनीतिक केंद्र थे।

3.11 पाँच पारिस्थितिकी प्रदेश और जीवनयापन का तरीका

प्राचीन तमिल काव्य में प्रदेश की प्राकृतिक विभिन्नता का सुंदर समन्वय हुआ है। यह *आईनतिनै* या पाँच विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों की अवधारणा के रूप में व्यक्त हुआ है। तमिलाहम् को पाँच *तिनैं* का समुच्चय बताया गया है, यह पाँच *तिनैं* हैं *कुरिंजि* (पहाड़ी वन क्षेत्र), *पालैं* (शुष्क प्रदेश), *मुल्लै* (चारागाह क्षेत्र), *मरूदम* (नम भूमि) और *नेयदल* (समुद्र तट)।

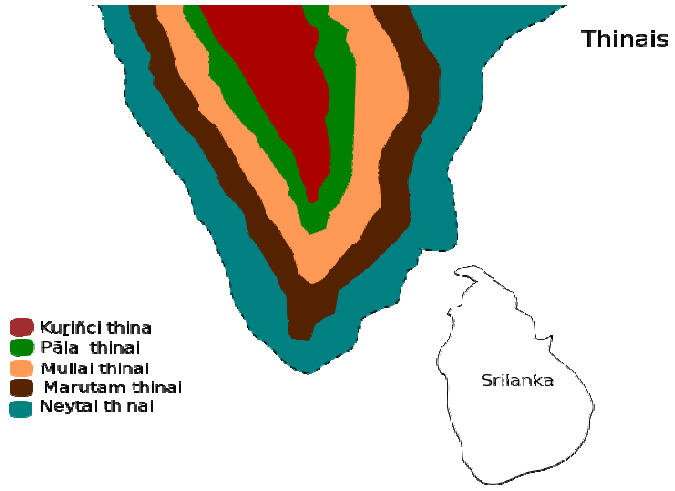

श्रेयः प्रवीणप। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स।

(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Thinai_en.svg)

कुछ प्रदेश ऐसे भी थे जहाँ एक या कई और *तिनै* प्रधान थी। पर आमतौर पर अधिकांश *तिनैंगल* चारों तरफ बिखरे पड़े थे। भौगोलिक स्थितियों के कारण प्रत्येक *तिनै* में मनुष्य के जीवनयापन का तरीका अलग–अलग था। सामाजिक समूह भी अलग–अलग थे। *कुरिंजि* प्रदेश में रहने वाले लोग शिकार और फल–फूल इकट्ठा कर अपनी जिंदगी बसर करते थे। *पालै* की सूखी भूमि के कारण, वहाँ के लोग कुछ उपजा नहीं सकते, अतः यहाँ के लोग जानवरों को चुराकर और लोगों को लूटकर अपना भरण–पोषण करते थे। *मुल्लै* के लोग पशुपालन और झूम खेती करते थे। *मरुदम* में हल से खेती की जाती थी और *नेयदल* में मछली मारना और नमक बनाना जीवनयापन का मुख्य साधन था। इस प्रकार तमिलाहम् के पाँच *तिनैगल* में भौगोलिक प्रभावों के कारण जीवन यापन के भिन्न–भिन्न तरीके अपनाये जाते थे। एक *तिनै* के लोग दूसरे

तिनैगल के लोगों से वस्तुओं का आदान–प्रदान करते थे। जैसे पहाड़ियों में रहने वाले लोग मैदानी इलाके से अपने वन्य उत्पादों जैसे शहद, मांस, फल आदि का आदान–प्रदान करने आते थे। तटीय प्रदेश में रहने वाले लोग उनके इन पदार्थों के बदले मछली और नमकव चरागाह क्षेत्र दुग्ध पदार्थो की आपूर्ति करते थे। कृषि प्रदेश सभी को आकर्षित करते थे। छोटे आत्मनिर्भर *तिनैगल* का इस प्रकार के आदान–प्रदान और आपसी निर्भरता से अपेक्षाकृत बड़े पारिस्थितिकी में विकास हुआ। इनमें से कुछ प्रदेशों में उत्पादन की दृष्टि से स्थिति अनुकूल थी और कुछ प्रदेशों में प्रतिकूल। बेहतर उत्पादन वाले इलाकों में अपेक्षाकृत विकसित सामाजिक श्रम विभाजन अस्तित्व में था। कम उत्पादन वाले इलाकों में सामाजिक संरचना सरल थी और वह कुल से मिलकर बनी थी। कुल मिलाकर तमिलाहम् असमान रूप से विकसित तत्वों से मिलकर बने एक जटिल समाज का प्रतिनिधित्व करता था जिनकी सांस्कृतिक विरासत एक समान थी। इस समाज में कई प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाएँ थीं, जिनमें कुल पर आधारित सरल मुखियातंत्र से लेकर राजघरानों द्वारा शासित जटिल मुखियातंत्र का अस्तित्व था। पूर्णविकसित राज्य का निर्माण होना अभी बाकी था।

3.12 राजनीतिक समाज का उद्‌भव

विभिन्न कुलों के मुखियातंत्र से राजनीतिक समाज का उद्‌भव माना जा सकता है। कुलों का यह मुखियातंत्र बड़ा भी होता था और छोटा भी। कविताओं में कुल मुखियातंत्र के मुखियाओं को श्रेष्ठ (*पेरु–मकन*) या मुखिया पुत्र (*को–मकन*) कहा गया है, इससे कुल के सदस्यों और मुखिया के बीच संबंध का भी पता चलता है। वस्तुतः

इससे नातेदारी के आधार का पता चलता है। इसमें से कुछ मुखियातंत्रों ने दूसरे कुलों पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपने कुल में मिलाकर, रक्त संबंधीय आधार पर अतिक्रमण भी किया होगा। अपेक्षाकृत जटिल प्रकृति के बड़े मुखियातंत्रों का निर्माण आक्रमणों और दूसरों के इलाकों पर कब्जा जमा कर ही हुआ है। मुखियाओं की वैवाहिक संधियों के कारण भी बड़े मुखियातंत्रों का निर्माण हुआ, पर मुखियातंत्रों के विकास का मुख्य आधार उनकी सम्पत्ति थी। जिनके पास अधिक खेतिहर इलाके थे, वे मुखियातंत्र अधिक शक्तिशाली थे। समकालीन तमिल क्षेत्र में इस प्रकार के मुखियातंत्रों में चेर, चोल और पांड्य सर्वप्रमुख थे। ये मुखियातंत्र राज्य के उद्भव के पूर्व के चरण का प्रतिनिधित्व करते थे।

विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र

तमिल क्षेत्र में तीन प्रकार के मुखियातंत्र थे। इन्हें *किल्लार* (छोटे मुखिया), *वेलीर* (बड़े मुखिया) और *वैडर* (सबसे बड़े मुखिया) में विभक्त किया जाता था। *किल्लार* छोटे गाँवों (*उर*) के मुखिया होते थे, जहाँ रक्त संबंध का आधिपत्य था। काव्यों में कई *किल्लारों* का उल्लेख किया गया है। उनके आगे उनके अपने गाँव का नाम जुड़ा होता था जैसे *अर्णकंटूर–किल्लार* या *उरंटूर किल्लार*। इनमें से कुछ प्रदेशों को बड़े मुखियातंत्रों ने हड़प लिया था और उन्हें बड़े मुखियातंत्रों के अभियान में साथ देना पड़ता था। काव्य में इस बात का उल्लेख है कि किलारों को बड़े मुखियातंत्रों जैसे चेर, चोल और पांड्य के सैनिक अभियानों में *विदुतोलिल* (अनिवार्य सेवा) करनी पड़ती थी। इसके बदले में

बड़े मुखियातंत्र *किल्लारों* को बतौर इनाम कुछ पराजित गाँवों का नियंत्रण सौंप देते थे। *वेलीर* मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्र पर नियंत्रण रखते थे, पर इनमें से कुछ मैदानी इलाकों में भी जमे हुए थे। पहाड़ियों पर स्थित मुखियातंत्रों के मुखिया मुख्यतः शिकारी प्रमुख होते थे, जिसे *वैडर कोमान* या *कुरवर–कोमान* या *नेडु वेट्टुवन* के नाम से जाना जाता था। *वेडर–कुरवर* और *वेट्टुवर* पहाड़ी इलाके के प्रमुख कुल थे, जिसमें *वेलीर* का वर्चस्व था। इस काल के मुखियातंत्रों के प्रमुख केंद्र वैंकटमलै (वैंकटम की पहाड़ियाँ), नांजिलमलै (त्रावणकोर की दक्षिणी पहाड़ी), परमपुरलाई (संभवतः पोल्लाच्ची के समीप आधुनिक परम्पिकुल्लम आरक्षित वन), पोट्टिलमलै (महुरै जिले की पहाड़ियाँ) आदि थे। बड़े मुखिया तंत्रों की श्रेणी में चेर, चोल और पांड्य प्रमुख राजघराने थे। इन्हें *मूवेंदर* के नाम से जाना जाता था। इन राजघरानों का बड़े हिस्सों पर नियंत्रण था। चेरों का नियंत्रण पश्चिमी घाट में स्थित *कुरिंजों* पर था। चोलों का कावेरी क्षेत्र पर और पांड्यों का दक्षिण–मध्य समुद्री इलाके पर नियंत्रण था। उनके अधीन कई छोटे–छोटे सरदार थे, जो नजराना (*तियरई*) पेश किया करते थे। उस समय तक राज्य क्षेत्र का कोई निश्चित सीमा–निर्धारण नहीं हो सकता था। इस युग में राजनीतिक अधिकार का कार्यान्वयन जनता के माध्यम से होता था न कि मूलभूत स्रोतों पर अधिकार जमाकर। जैसे कि *कुरवर* या *वेतर* या *वेंट्टुवर* जैसे लोगों पर नियंत्रण स्थापित कर ही कोई मुखिया सरदार बन पाता था। इन लोगों का सामूहिक तौर पर पहाड़ी या मैदानी इलाकों पर अधिकार होता था। मुखिया या सरदार सगोत्रता पर आधारित समाज से ही अधिकार प्राप्त करता था। विभिन्न स्रोतों पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार न होकर

बल्कि पूरे समुदाय का अधिकार होता था, यह उनका वंशानुगत अधिकार होता था। यह वंशपरम्परा पर आधारित समुदाय था और वे स्वेच्छा से अपने मुखिया को नज़राना देते थे। नियमित और निश्चित समय पर करों का भुगतान करना प्रचलन में नहीं था। फिर प्रमुख मुखिया की शक्ति अपने क्षेत्र की उत्पादकता और उपजाउपन पर आधारित होती थी। पशुपालक या शिकारी समुदाय के सरदार की शक्ति खेतिहर इलाके के सरदार से कम होती थी। शक्तिशाली सरदार कमजोर सरदार के इलाकों पर कब्जा जमा लेते थे और उनसे नज़राना वसूल करते थे। इस काल में लूटमार का धन इकट्ठा करना एक आम प्रचलन था।

लूटमार और लूट के माल का बंटवारा

अपने लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए बड़े और छोटे सरदार अक्सर लूटमार किया करते थे। ये सरदार अपने सगोत्रों के अलावा लूट के माल का हिस्सा सैनिकों, भाटों और चिकित्सकों को भी दिया करते थे। *कोडै* संस्था (उपहार प्रदान करने की संस्था) लूट के माल के पुनर्वितरण की प्रथा का एक मुख्य हिस्सा थी। उपहार प्रदान करना किसी भी सरदार का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व माना जाता था। *पुरनानूरू(एट्टुत्तोगै)* की परम्परा में संकलित एक काव्य की अधिकांश कविताओं में सरदार की उदारता की प्रशंसा की गयी हैं, इन कविताओं के अनुसार बहादुरी और उदारता को सरदारों का प्रमुख गुण माना जाता था। स्थानीय स्रोतों के अभाव में लूटमार आय का प्रमुख स्रोत बन जाता था। *पुरनानूरू* में संकलित एक काव्य में

ऊर्तूरकिन्तार नाम के सरदार का उल्लेख है, जिसके पास आय के स्रोत काफी कम थे। जब भी कोई व्यक्ति उससे उपहार मांगने जाता था, तो वह अपने लोहार को बुलाकर नया बल्लम बनाने का आदेश देता था ताकि वह लूटमार करके धन एकत्र कर उसे उपहार के तौर पर अपने आश्रितों को दे सके। इस प्रकार लूटमार और प्राप्त माल का पुनर्वितरण उस समय की राजनीतिक व्यवस्था का एक मुख्य अंग बन चुका था। सरदार एक दूसरे को लूटा करते थे। लूटमार के अभियान में छोटे सरदार बड़े सरदारों का साथ देते थे और लूट के माल के समय इनकी नजर ज्यादातर पशुधन और अनाज पर होती थी। इस काल के भाटों ने अपने गीतों में हाथी, घोड़े, स्वर्ण कमल, रथ, हीरे–जवाहरात और मलमल के कपड़े आदि उपहारों की चर्चा की है। कभी–कभी बड़े सरदार अपने आक्रमण के दौरान दूसरे सरदारों के भू–क्षेत्र पर भी अधिकार कर लेते थे। इन अधिकृत भू–क्षेत्रों को बड़े सरदार अपने सहायक छोटे सरदारों के बीच बाँट दिया करते थे। यह स्मरणीय है कि गाँव की भूमि नहीं बल्कि लोगों पर स्थापित नियंत्रण को दान में किया जाता था।

मूवेंदर और राजनीतिक नियंत्रण के विभिन्न स्तर

प्रधान शासक समुदाय के रूप में *मूवेंदर* की पुरातनता मौयकाल तक जाती है। अशोक की राजविज्ञप्तियों/फरमानों में उनका जिक्र मिलता है। भाट *मूवेंदर* की स्तुति एक ''राजा'' के रूप में करते हैं, और उनके अनुसार *मूवेंदर* का अधिकार पूरे तमिल क्षेत्र पर था। पर ''राजा'' के उल्लेख का यह मतलब नहीं है राज्य की स्थापना हो चुकी थी।

एक राज्य के निर्माण के लिए स्थायी सेना, नियमित कर व्यवस्था, नौकरशाही और स्थानीय प्रशासनिक निकायों का होना अनिवार्य है। अभी तक इनकी उत्पत्ति नहीं हो सकी थी। इसके बावजूद *मूवेंदर* अन्य सरदारों से बिल्कुल भिन्न था। लगातार छोटे सरदारों को अपने अधीन लाने का प्रयत्न एक निरंतर परिक्रिया थी। तीनों शासक समुदाय – चेर, चोल और पांड्य का एक ही प्रमुख मकसद था, *वेलीर* (बड़े सरदारों) को अपने अधीन करना। *वेलीर* सरदार की परम्परा भी काफी प्राचीन थी। अशोक के फरमान में चेर, चोल और पांड्यों के साथ–साथ सत्यपुत्रों या अविगैमान सरदारों का भी उल्लेख हुआ है। सत्यपुत्र *वेलीर* सरदारों की श्रेणी में आते थे। उनका ऊपरी कावेरी की पहाड़ियों पर स्थित लोगों पर नियंत्रण था। अन्य *वेलीर* सरदारों का अधिकार क्षेत्र *मूवेंदर* की सीमा से लगी हुई ऊँची भूमि और समुद्री तट तक फैला हुआ था। *वेलीर* सरदारों के नियंत्रण में पहाड़ी और मैदानी इलाके थे, इनमें प्रमुख हैं : धर्मपुरी, नीलगिरी, मदुरई, उत्तरी आर्कोट, त्रिचिनापल्ली, पुदुकोट्इ आदि आधुनिक जिले। तमिल क्षेत्र में लगभग पन्द्रह महत्त्वपूर्ण *वेलीर* मुखियातंत्र अस्तित्व में थे। इनमें से कुछ *वेलीरों* का नियंत्रण व्यापारिक स्थल, बंदरगाह, पहाड़ियों के मुहाने और पहाड़ी बस्तियों जैसे महत्त्वपूर्ण केंद्रों में रहने वाले लोगों पर था। स्थान और स्रोतों से उनकी शक्ति का निर्धारण होता था। इंडो–रोमन व्यापार की शुरूआत होने के बाद महत्त्वपूर्ण स्थानों और व्यापारिक माल पर नियंत्रण से सरदारों का महत्त्व बढ़ गया। कविताओं में पराम्बुमलाई (पोल्लाची के समीप) के पारी, पोड़िइलमलाई के अरियार (मदुरई),नंजीमलाई आंदीरन (श्रावणकोर के दक्षिण), कोडुम्बै के इरून्को–वेल (पदुक्कोट्टइ) आदि प्रमुख *वेलीर*

सरदारों का जिक्र किया गया है। ऐसे सामरिक महत्त्व के क्षेत्रों के *वेलीर* सरदारों को बार–बार *मूवेंदर* जैसे बड़े सरदारों का आक्रमण झेलना पड़ता था। इस भाग–दौड़ में कभी–कभी कमजोर सरदारों का विनाश भी हो जाता था। *मूवेंदर* द्वारा परंबुनाडु के *वेलीर* सरदार, पारी की सारी रियासत का नाश इसी प्रकार का उदाहरण है। युद्ध के अतिरिक्त विवाह के माध्यम से भी बड़े सरदार *वेलीर* रियासत तक पहुँचने की कोशिश करते थे। चेर, चोल और पांड्यों द्वारा *वेलीरे* की लडक़ी से शादी करने के कई उदाहरण मिलते हैं। सामरिक महत्त्व के क्षेत्र के सरदार पर बड़े सरदार सैन्य नियंत्रण रखते थे। उनका दमन करके बड़े सरदार उन्हें अपने अधीन कर लेते थे। *मूवेंदर* के नियंत्रण में ऐसे कई पराधीन सरदार थे, जो लूटमार के अभियान में उनका साथ देते थे।

यह स्पष्ट है कि समकालीन तमिल क्षेत्र में *मूवेंदर* सर्वशक्तिमान राजनीतिक सत्ता थी। इसके बाद *वेलीर* का स्थान आता था। जबकि *किल्लार* के ग्रामीण सरदार राजनीतिक शक्ति का प्राथमिक स्तर थे। इन्हें देखकर एक राजनीतिक पदानुक्रम का आभास होता है पर राजनीतिक शक्ति के इन तीन स्तरों को सूत्रबद्ध करने के लिए राजनीतिक नियंत्रण की कोई कड़ी नहीं बन पाती थी। *मूवेंदर* द्वारा युद्ध और विवाह के माध्यम से छोटे सरदारों को अपने अधीन करने की प्रक्रिया जारी रही, पर अभी भी एक एकीकृत राजनीतिक व्यवस्था का अभाव था। सगोत्रीय आधार पर संगठित कुलों पर परम्परागत अधिकार ही इस काल के राजनीतिक नियंत्रण का आधार था। परम्परागत ज्येष्ठ लोगों की सभा प्रतिदिन के सभी कार्यकलापों को संपादित करती थी। सभा स्थल को *मन्रम*

कहा जाता था। अर्थात् किसी पेड़ के नीचे बैठने के लिए बनाया गया चबूतरा, इसे *पोदियिल* भी कहते थें। सरदार की सहायता के लिए ज्येष्ठों की एक सभा होती थी, जिसे *अवै* (सभा) कहा जाता था, इसकी संरचना, बनावट और कार्य का अभी तक पूर्ण ब्यौरा प्राप्त नहीं हुआ है। आरंभिक तमिल राजनीतिक व्यवस्था के दो और निकायों की प्रायः चर्चा की जाती है, इसे *ऐप्पेरूम कुजु*(पाँच बड़े समूह) और *एणपेरायम*(आठ बड़े समूहों) के नाम से जाना जाता है। संभवतः इन निकायों का विकास तृतीय शताब्दी सी. ई. के आसपास हुआ था, यह काफी बाद की गतिविधि है। इन निकायों की संरचना और कार्यों का भी कुछ निश्चित पता नहीं चला है।

बोध प्रश्न–2

1) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और सही (√) और गलत (X) का निशान लगाएँ।

i) *तमिलाहम्* (तमिल क्षेत्र) के सरदार तंत्र नियमित कराधान पर आधारित थे। ( )

ii) इस काल की राजनीतिक सत्ता आर्थिक स्रोतों के नहीं बल्कि लोगों के नियंत्रण पर आधारित थी। ( )

iii) *मूवेंदर*पूर्ण रूप से विकसित राज्य था। ( )

iv) उपहार प्रदान करना सरदार का प्राथमिक सामाजिक कर्त्तव्य था।

( )

2) विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र किस प्रकार सहअस्तित्व में थे और उनमें कैसे आदास–प्रदान होता था? कुछ पंक्तियों में लिखिए।

3.13 सारांश

दक्कन के इतिहास में सातवाहन काल इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि प्रायद्वीप भारत में प्रथम बार पहली सदी बी.सी.ई. में प्रारंभिक राज्य अस्तित्व में आया। राज्य का प्रशासन मौर्य प्रशासन की अपेक्षाकृत सरल था। सामुद्रिक एवं देश के अन्दर व्यापार का प्रसार इस काल के इतिहास का निर्णायक कारक था। इसके कारण शासकों के राजस्व में अतिरिक्त आमदनी का समावेश हुआ और बहुत से व्यावसायिक समूहों में इसके कारण संपन्नता भी बढ़ी। इन सबका परिणाम यह भी हुआ कि संपूर्ण दक्कन प्रायद्वीप में इस काल में बहुत से नगरों एवं शहरों का विकास हुआ।

इस इकाई में आपने तमिल क्षेत्र की विभिन्न पारिस्थितिकी इकाईयों की जानकारी प्राप्त की। इसके अतिरिक्त वहाँ जीवनयापन के विभिन्न तरीकों और सरदार तंत्र स्तर के राजनीतिक स्वरूप से परिचित होने का भी आपको अवसर मिला। आप इस बात से भी अवगत हुए कि उस काल की राजनीतिक व्यवस्था में लूटमार और लूटमार के माल के वितरण का महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसके अतिरिक्त आपको यह भी जानकारी मिली कि इस काल की राजनीतिक सत्ता का आधार कुल संबंध व रक्त संबंध था। तृतीय शताब्दी सी.ई. के बाद राजनीतिक संगठन के सतत् विकास की प्रक्रिया से भी आप अवगत हो गये होंगे।

3.14 शब्दावली

किल्लार : मुखिया या सरदार का सबसे छोटा तबका जिसका अपने कुल पर सीधा अधिकार होता था।

तिनैं : एक विशिष्ट पारिस्थितिकी जलवायु क्षेत्र जिसमें सामाजिक समूहों और जीवनयापन के तरीके मौजूद हों।

भाट : राजस्तुति करने वाले कवि।

मन्रम/पोदियिल : पेड़ के नीचे बैठने के लिए बनाया गया चबूतरा।

पदानुक्रम : पद के अनुसार, इकाई में इस शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के hierarchy के लिए किया गया है।

भौगोलिक क्षेत्र या इकाई :एकविशिष्ट पारिस्थितिकी विशेषताओं जैसे, पर्यावरण, मिट्टी के प्रचार, उर्वरता आदि से युक्त प्रदेश।

मुखियातंत्र : वंशानुक्रम पर आधारित एक समाज जिसमें एक मुखिया अपने लोगों से उनकी स्वेच्छा से नजराना प्राप्त करना था।

मूवेंदर: तीन प्रमुख शासकीय समूह, जैसे चेर, चोल और पांड्य।

वेलीर: प्रधान समूहों के ठीक बाद के प्रमुख या अपेक्षाकृत बड़े सरदार।

वेंदर: प्रधान समूह या सबसे बड़े सरदार।

3.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. देखिए भाग 3.9

2. देखिए ''समुद्र तट से दूर की बस्तियाँ', उपभाग 3.7 के अंतर्गत

बोध प्रश्न–2

1. (i) x (ii) √ (iii) x (iv) √

2. देखिए ''विभिन्न प्रकार के मुखियातंत्र'', भाग 3.12 के अंतर्गत।

3.16 संदर्भ ग्रंथ

चंपकलक्ष्मी, आर. (1996).*ट्रेड, आईडियोलॉजी एँड अर्बनाईजेशन : साउथ इंडिया 300 बी.सी. से 300. ऐ.डी. तक.*दिल्ली.

गुरुकल, राजन एण्ड वरियर, राघव एम. आर. (ऐड.) (2000).*कल्चरल हिस्ट्री ऑफ केरल.* वॉल्यूम–1, तिरूवंथपुरम।

कैलासपथी, के. (1972).*तमिल हैरोइक पोएट्री.* ऑक्सफोर्ड.

महालिंगम, टी.वी. (1970).*रिपोर्ट ऑन द एक्सकेवेशनस इन द लोयर कावेरी वैली.* मद्रास.

सुब्रहामण्यम्, एन (1980).*संगम पॉलिटी : द एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड सोशियल लाईफ ऑफ द संगम तमिल्स.* रिप्रिंट, बॉम्बे.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 कृषि बस्तियाँ और कृषि समाजः प्रायद्वीपीय भारत*

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 स्त्रोत

4.3 *तिनै* अवधारणा

4.4 तमिलाकम् में कृषि प्रणाली

4.5 तमिलाकम् में आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक संगठन

4.5.1 *तिनै* व्यवस्था का पतन

4.6 दक्कन में कृषि व्यवस्था का विस्तार

4.7 दक्कन में सामाजिक जीवन

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.11 संदर्भ ग्रंथ

* जोएता पाल, पी. एच. डी. अभ्यार्थी जवाहरलाल नेहरु वि''वविद्यालय, नई दिल्ली

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य 200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. के उपमहाद्वीपीय क्षेत्र के प्रायद्वीपीय भाग में कृषि बस्तियाँ तथा कृषि से संबंधित विषयों का विश्लेषण करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप जानेंगेः

- प्रायद्वीपीय भारत में जीवन निर्वहन के विभिन्न प्रकार;
- तिनैं व्यवस्था;
- इन समाजों में प्रचलित सामाजिक व्यवस्था;
- समाज में श्रमिकों का संगठन।

4.1 प्रस्तावना

विश्व इतिहास में, स्थायी कृषि मील का पत्थर साबित हुई। उन बस्तियों में खेती शुरू हुयी, जिनकी जल स्रोतों से निकटता थी, जिससे खानाबदोश जीवन शैली का अंत हुआ। हालांकि जहाँ कृषि जीवन–यापन का प्रमुख साधन था, वहाँ शिकार–संग्रह, मछली पकड़ना आदि में पूरी तरह से गिरावट नहीं आई थी। यह इकाई प्रायद्वीपीय भारत (दक्कन तथा दक्षिण) में कृषि विस्तार से संबंधित है। यह मुख्यतः 200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. के बीच की अवधि पर प्रकाश डालती है।

दक्षिण भारत में कृषि व्यवस्था के विस्तार को तीन चरणों में निर्धारित किया जा सकता है। पहले चरण में, कृषि आदिम तकनीक से की जाती थी तथा खेती पहाड़ी ढलानों तक सीमित थी। दूसरे चरण में, कृषि तकनीकों में उन्नति हुई तथा नदी घाटियों में

हल से किए गए खेती के प्रमाण मिलते हैं। तीसरे चरण में, गैर–कृषक समूह भी कृषक समाज का हिस्सा बन गए और ब्राह्मण एवं बौद्ध मठों को कृषि योग्य जमीन दी गई। उनके पास कृषि के लिए अच्छी तकनीक एवं मौसम का बेहतर ज्ञान था।

4.2 स्त्रोत

तमिलाकम् का मुख्य स्त्रोत *संगम* साहित्य है। अन्य स्त्रोतों में महापाषाणकालीन कब्रगाह, तमिल–ब्राह्मी शिलालेखों के साक्ष्य, पूर्व–रोम एवं रोम के सिक्कों के भंडार और ग्रीक–रोमन नाविकों और भूगोलशास्त्रियों के विवरण शामिल हैं। हमें पहले साहित्यिक स्रोतों पर ध्यान देगें।

संगम साहित्य की अवधि को सर्वप्रथम दो शताब्दी सी.ई. में निर्धारित किया जा सकता है। हालांकि इनका संग्रहण तथा वर्गीकरण आठ तमिल गद्यसंग्रहों या एट्टुटोकाईमें 12वीं शताब्दी के आसपास तक किया गया। इसमें समाज के सभी वर्गों के पुरूष और स्त्री कवि के रूप में शामिल थे जिन्हें उनकी रचनाओं के लिए सम्मानित भी किया गया। इन कविताओं की रचना तीन *संगमों* के दौरान हुई। *संगम* शब्द का अर्थ मिलना एवं समूह (अकादमी) था। तीनों संगमों को पांडयन शासकों का संरक्षण प्राप्त था जिसे *तलाई संगम, इड़ाई संगम* और *कड़ाई संगम* कहा जाता था, जिसका अर्थ क्रमशः प्रारंभिक, मध्य एवं अंतिम *संगम* था। प्रारंभिक दो *संगमों* की रचना खो गई है। एट्टुटोकाई के सारे पाठ *कड़ाई* या अंतिम *संगम* से लिए गए हैं।

इस लंबे काल के लिए एक ही साहित्यिक कोष का प्रयोग हानिकारक है क्योंकि इससे 500 या 600 साल का एक सामान्य चित्रण ही प्रतीत होता हैं। इतना ही नहीं, *संगम* साहित्य का अपना आंतरिक कालक्रम है। कुछ विद्वानों का मत है कि *संगम* साहित्य में प्राचीन कबिलाईसंगठनों के अस्तित्व का वर्णन है। ग्रन्थों से दो अलग–अलग सामाजिक–राजनीतिक समय अवधि के बारे में जाना जा सकता है। पहला आदिवासी चरण जो *मुल्लै* (चारागाह एवं जंगल) और *कुरिंजी* (पहाड़ी) प्रदेशों में देखा जा सकता है और दूसरे चरण में *मरूतम* (उपजाऊ कृषि मैदान) और *नेयतल* (समुद्रीतट) प्रदशों में प्रारंभिक शहरीकरण का वर्णन किया गया है। इस इकाई में इन पर सविस्तार वर्णन आगे दिया जाएगा।

संगम साहित्य का स्रोत काफी समृद्ध है क्योंकि इसमें कृषि संबंधित गतिविधियों का पर्याप्त वर्णन मिलता है। कई द्वितीयक उत्पादन गतिविधियों जैसे गन्ने से चीनी बनाना इत्यादि का विस्तृत विवरण है। *संगम* साहित्य में गन्ने और रागी की खेती, अनाजों की कटाई एवं अनाज सुखाने जैसी अनेक प्राथमिक कृषि संबंधी गतिविधियों का वर्णन है।

ग्रीक–रोमन रचनाओं में प्लिनी की '*नैचुरल हिस्ट्री*', '*द पेरिप्लस ऑफ दइरिथ्रियन सी*' और टॉलमी की '*ज्योग्रॉफी* शामिल है। '*नैचुरल हिस्ट्री* और '*पेरिप्लस* से हमें आयात एवं निर्यात का विस्तृत विवरण मिलता है। निर्यात में सुगंधित वस्तु, काली मिर्च, अदरक, ईलायची, लौंग एवं अन्य मसालें, जंगली जीव, जानवरों की खाल, हाथी दाँत, सागौन की लकड़ी तथा चंदन की लकड़ी, सूती कपड़े, महँगें पत्थर, मोती तथा

जवाहरात इत्यादि शामिल थे। इस प्रकार इनसे हमें *तिनैं* क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं के बारे में पता चलता है।

सिक्कों के भंडार महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इससे कृषि से बाहर आर्थिक रणनीतियोंअर्थात व्यापार का पता चलता है। चूँकि व्यापार की वस्तुओं में *तिनैं* क्षेत्र से उत्पादित वस्तुऐं शामिल थी, अतः हमारे अध्ययन के लिए प्रायद्वीपीय भारत में कृषि का अध्ययन काफी प्रासंगिक है। आहत सिक्कें और रोमन सिक्कों के ढेर तमिलनाडु के पोल्लाची, करूर, वेल्लालूर, कलयमुतुर, मदुरै, कोयम्बटूर, यशवंतपुर, पुदुक्कोट्टई और केरल के इय्यल, कोट्टयम, वालुवल्ली और पुथेनचिरा जैसे विभिन्न स्थलों पर पाए गए हैं। आहत सिक्के पूर्व–मौर्य राज्यों के हैं जबकि रोमन सिक्के रोमन साम्राज्य के हैं जिनका काल पहली शताब्दी के ऑगस्टस से लेकर चौथी शताब्दी के कॉन्स्टेंटिनस तक है। रोमन सिक्के बड़े पैमाने पर प्रचलित नहीं थे।ये संभवतः केवल विदेशी व्यापार एवं गहनों के रूप में इस्तेमाल किए जाते थे। इस संदर्भ में कोई भी स्वदेशी सिक्केनहीं मिले हैं, लेकिन कुछ आहत सिक्केपाए गए हैं।

एक अतिरिक्त स्रोत जिसका इस्तेमाल करना मुश्किल है मौखिक परंपरा के रूप में है। अनेक लोकगीत कृषि प्रक्रियाओं का वर्णन करते हैं। हालांकि इन गीतों का समय निर्धारण एक मुश्किल कार्य है, इसके बावजूद, यह महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं।

4.3 *तिनैं* अवधारणा

कृषि के जीवन निर्वाहक का प्रभावी रूप जनसंख्या वृद्धि, ऋतु ज्ञान एवं संसाधनों के दोहन से संबंधित हैं।

ऐनतिनैं या पाँच*तिनाई/* परस्थितिकी क्षेत्रों का उल्लेख सबसे प्राचीन तमिल ग्रंथों में से एक तोलकापियम में है। प्रत्येक तिनैं का जीवन निर्वाहक स्वरूप अलग था। पाँच तिनैं निम्नांकित हैं:

- *कुरिंजी*(kurinji) – पहाड़ और वन;
- *मुल्ले* (mullai)– चारागाह जिनमें कम ऊंची पहाड़ियां और छितरे वन थे;
- *मारुदम*(marutaum)– उपजाऊ कृषि मैदान;
- *नेयतल*(neytal)– समुद्री तट; और
- *पालै* (palai)– शुष्क क्षेत्र।

प्रत्येक *तिनैं* क्षेत्र ने मिट्टी के प्रकारों, जलवायु, वर्षा तथा अन्य स्रोतों की उपलब्धता के आधार पर एक विशेष प्रकार की आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया। इनमें से प्रत्येक के अपने कुलदेवता तथा विशिष्ट प्रकार के फूल और फल थे। प्रत्येक *तिनैं* का नामकरण वहाँ के विशेष पौधों के नाम पर रखा गया था। कोई भी *तिनैं* क्षेत्र एक दूसरे से बिल्कुल अलग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि ये एक दूसरे से जुड़े हुए थे। अतः,

किसी भी तिनैं क्षेत्र को बिल्कुल अलग नही समझा जा सकता है जिसमें न के बराबर या बाहरी संबंध थे।

आइए, हम प्रत्येक *तिनैं* क्षेत्र की संक्षिप्त चर्चा करें।

कुरिंजी

कुरिंजी में वट्टर (vetter/vedar), परायार, वेट्टुवर, कटमपर और कुरवर जैसे जनजातीय शिकारी समूह रहते थे। कुरवर औरतें भविष्य का पूर्वानुमान करने तथा चिकित्सकीय ज्ञान के लिए जानी जाती थीं। इन जनजातीय समूहों में मातृसत्तात्मक व्यवस्था का पालन होता था।

कुरिंजी क्षेत्र शिकार के लिए महत्वपूर्ण माना जाता था जहाँ कृषि भी की जाती थी। हालांकि, विद्वानों का मत है कि कृषि में हल का उपयोग होता था और एकमात्र झूम की खेती ही नहीं होती थी। हमें अब यह ज्ञात है कि *कुरिंजी* निवासी पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि करते थे। उन्होंने फलियां, सेम, राई, शकरकंद, मूंगफली, कंद, गन्ना, मटर तथा खास किस्म के चावल के प्रकारों को उगाया जिन्हें *चमाई* कहा जाता था। उन्होंने वन से प्राप्त उपयोगी वस्तुऐं जैसे लकड़ी, बाँस, मधु और चावल इत्यादि का भी संग्रह किया। मधु निकालने का काम एवं उसकी खेती स्त्री और पुरूष दोनों मिलकर करते थे।

कुरिंजी के देवता मुरूगन या सेयोन थे, जिसका अर्थ 'लाल' या 'अतिसुंदर' होता है। वह युद्ध के देवता थे। बाद में, इन्हें शिव के बेटे कार्तिकेय के रूप में हिंदू देव समूहों में शामिल कर लिया गया। *कुरिंजी* का नाम एक विशेष प्रकार की झाड़ी के नाम पर रखा गया जो पहाड़ी क्षेत्रों में बारह वर्षों में एक बार खिलती है।

मुल्लै

मुल्लै चारवाहा प्रधान समाज था। इनके मवेशी समूह में भेड़ तथा बकरी भी शामिल थे। वे पशुपालन करते थे, लेकिन यह जीवन निर्वहन का यह एकमात्र साधन नहीं था। अतः, उन्होंने झूम की खेती की एवं विभिन्न प्रकार के चावल, दाल और राई को उगाया। इस क्षेत्र में पशुचारण एवं दुग्ध उत्पादन सबसे अधिक प्रचलित गतिविधिया थी। इन गतिविधियों में महिलाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी।

चारागाह क्षेत्र होते हुए भी यह इलाका सघन वन क्षेत्रों से भरा हुआ था। *मुल्लै*का क्षेत्र परिवर्तनशील परस्थितिकी क्षेत्र का हिस्सा था क्योंकि यह इलाका कृषि क्षेत्रों के किनारे बसा हुआ था जिसे आसानी से साथ मिलाया जा सकता था। *मुल्लै* के प्रमुख देवता 'मायोन' या 'काला' थे जिसे गोपाल या कृष्ण से जोड़कर देखा जाता है। *मुल्लै* का नाम एक पेड़ के नाम पर आधारित था जो चारागाह का प्रतीक हैं

यह खास क्षेत्र राजनीतिक संरचनाओं से संबंधित था। एक सिद्धांत के अनुसार, यहीं से राजशाही का उद्भव हुआ। यह सिद्धांत उस वक्त और मजबूत हो जाता है जब हम

मानते है कि 'राजा' के लिए तमिल शब्द '*कौन* जिसका अर्थ मवेशी पालक और रानी के लिए '*आची* जिसका अर्थ स्त्री गड़ेरिया है।

पालै

पालै में मारावारों तथा कल्लरों की बसावट थी। चूँकि वे शुष्क प्रदेशों में रहते थे जो जीवन निर्वहन के लिए उपयुक्त नहीं थे, अतः उन्हें लूट का सहारा लेना पड़ता था। मारावार छोटे सरदार थे। वीरगाथाओं में इन्हें मवेशियों के छापें करते हुए दर्शाया गया है। हालांकि कुछ विद्वानों का तर्क है कि *तिनै* के सभी क्षेत्रों में इस तरह की गतिविधियाँ मौजूद थी। लूट और डकैती का संबंध आर्थिक जीविका की तुलना में शक्ति संबंधों से था।

इतिहासकारों का मानना है कि *पालै* क्षेत्र गर्मियों की मौसमी घटना थी जब कृषि की जरूरतों को पूरो करने के लिए पानी की कमी थी। इस तरह लूटमार और छापेमारी होती रही। इनके प्रमुख देवता कोरावाई थे, जिनकी पूजा अर्चना पाँचों *तिनै* क्षेत्रों में होती थी। उनकी प्रजनन क्षमता की पूजा की जाती थी। इसे हिंदू धर्म की देवी दुर्गा के रूप में प्रतिस्थापित किया गया था। *पालै* क्षेत्र में पाए जाने वाले पेड़ का भी वही नाम था जो गर्मी और जाड़े दोनों के शुष्क मौसम में भी जीवित रहने की क्षमता के लिए जाना जाता था।

नेयतल

नेयतल के निवासी मछली पकड़ने, मोती की खेती और नमक बनाने का काम करते थे। जबकि पर्तावर धीरे–धीरे मोती की खेती और व्यापार में विशेष रूप से शामिल हुए, उमानार ने नमक बनाने में विशेषता हासिल कर ली।

नेयतल का इलाका सिर्फ समुद्र के किनारे ही नहीं था, बल्कि उसमें नदियों, झीलों, बाँधों, मुहाने (जहाँ नदी व सागर का मिलन होता है) और लैगून जैसे जलस्त्रोत थे। शंखों का संग्रह और उनका चूड़ियों में निर्माण करना इत्यादि *नेयतल* के लोगों की महत्वपूर्ण गतिविधियों में से एक था। यहाँ धान की भी खेती की जाती थी। *नेयतल* प्रदेशों में मछली से तेल भी निकाला जाता था। *नेयतल*का विशिष्ट फूल जलयुक्त तथा दलदली क्षेत्रों में पाया जाने वाला जल लिली था और वर्षा देवता वरुण पीठासीन देवता थे।

मारुदम

मारुदम ऐसा प्रदेश माना जाता है जहाँ कृषि जीवन निर्वाह का मुख्य साधन था। यहाँ उलवर और तोलुवर हल से खेती करते थे। यहाँ व्यक्तियों के विशेषज्ञ होने के उदाहरण मिलते हैं। अतः उलवर हलवाहे थे, विनैयेवलर ठोस जमीन में खेती करने वाले तथा तोलुवर धान और गन्ने की खेती करते थे।

मारुदम क्षेत्रों ने अन्य *तिनैं* प्रदेशों के व्यक्तियों को आकर्षित किया। इस प्रदेश के उत्पादन ने विभिन्न प्रकार के कारीगरों, जिसमें मनोरंजनकर्ता, कवि, ज्योतिषी तथा संगीतकार भी शामिल थे, को वहाँ बसने लायक संसाधन प्रदान किये। इस प्रदेश में

बढ़ई (*टक्कर*), लोहार (*कोल्लर*) और व्यापारी (*वनिकर*) रहते थे। *मारुदम* शासकों द्वारा *कुरिंजी* और *मारुदम* प्रदेशों को वाणिज्य एवं व्यापार विनिमय नेटवर्क में शामिल किया गया।

*मारुदम*के नाम को उसी क्षेत्र के दलदल में उगने वाले लाल फूल के नाम पर रखा गया और उसके प्रमुख देवता वेंदन थे। सभी प्रकार के कृषि कार्यों में औरतों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। *मुल्लै* की तरह, पितृसत्ता का विकास बाद में हुआ। बाद में, वहाँ के राजा को वेंदन कहा गया, जो उनके प्रमुख देवता के नाम पर आधारित था।

तिनैं के बारे में आँकड़ा निम्नांकित है:

कुरिंजी	पहाड़ी क्षेत्र	पहाड़ों पर उगने वाला कुरिंजी फूल	जीवन निर्वहन स्तर, शिकार संग्रह	सियोन/मुरूगन
मुल्लै	चारागाह क्षेत्र/जंगल	वृक्ष जो चारागाह भूमि का प्रतीक है।	पशुपालन, झूम खेती	मायोन
नेयतल	समुद्र तट/नदी किनारा	जललिली	मछली पकड़ना	वरूणन
मारुदम	जलयुक्त भूमि/मैदान	मारुदम	कृषि	वेंदन
पालै	सूखा/शुष्क क्षेत्र	पालै	पशु चोरी/लूटना	कोरावई

हालांकि, विद्वानों का तर्क है कि *तिनैं* क्षेत्र को एक संपूर्ण श्रेणी मानने के बजाय उसे सांकेतिक साधन के रूप में समझना होगा जो सरदार तंत्र से राज्य के संक्रमण के उस क्षण में स्थानिक संगठन के रूप को सूचित करता है।*तिनै*क्षेत्र का संबंध *संगम* साहित्य

के सौंदर्य तथा विशेष रूप से प्रेमियों से संबंधित था। इससे अधिक *तिनैं* व्यवस्था का अन्य कोई साहित्यिक प्रमाण नहीं है, पुरातात्विक साक्ष्य तो दूर की बात है।

4.4 तमिलाकम् में कृषि प्रणाली

ऐतिहासिक रूप से, प्राचीन राजाओं की उत्पत्ति *मारुदम* से हुई। प्राचीनतम शहरों का उदय *मारुदम* तथा *नेयतल* में ही हुआ। इस प्रकार, इन दोनों *तिनैं* क्षेत्रों का संबंध शाहीपरिवारों, पेरियार घाटी के चेराओं, कावेरी घाटी के चोलों, ताम्रपाणी घाटी तथा वैगई में पाण्ड्यों जैसे राजकीय परिवारों से था। *मारुदम* में राजनीतिक तथा वाणिज्यिक दोनों महत्व के शहर थे, जबकि *नेयतल* में वाणिज्यिक महत्व के शहर थे। चोलों के काल में उरैयुर और कावेरीपम्पट्टीनम (पुहार), पांडया के अंतर्गत मदुरै तथा कोरकइ तथा चेरा काल में वनजी (करूवुर) ओर मुसीरी महत्वपूर्ण शहर थे। समुद्र के किनारे वाले शहरों को पट्टीनम कहा जाता था। *मुल्लै* तथा *कुरिंजी* का क्षेत्र आदिवासी बहुल था और वहीं *मारुदम* तथा *नेयतल* प्रारंभिक शहरीकरण से संबंधित था।

मेनुपुलम या समृद्ध क्षेत्र मारुदम में स्थित थे। इन क्षेत्रों का इस्तेमाल मुख्य उपज जैसे, चावल तथा गन्ना की खेती के लिए होता था। मेनुपुलम के विपरीत अन्य *तिनैं* क्षेत्रों में वनपुलम या बड़े खेत थे जिनका उपयोग उस विशेष *तिनैं* क्षेत्र में उगने वालों दलहन, बाजरा, तिल, घोड़ा–चना, कंद, सब्जियाँ, फल और अन्य फसलों की खेती में इस्तेमाल किया जाता था।

हल कृषि में हल का इस्तेमाल किया गया। बैलों को डंडों से गरदन के सहारे हल में बाँधा जाता था। हल को मेली या नंजिल कहा जाता था। यह लोहे की इत्तला थी। गन्ने और चावल जैसे अनाजों की गहरी जुताई के लिए लौहे के नोक/इत्तला वाले हल की आवश्यकता होती थी। हल शब्द का वर्णन साहित्यों तथा शिलालेखों में भी किया गया है। तमिलाकम्के गुफा शिलालेखों में एक प्रकार के फलों के व्यापारी का उदाहरण मिलता है। कुदाल, खंती और हँसिया का इस्तेमाल विभिन्न प्रकार के कार्यों में किया जाता था। अनेक स्थलों पर खुदाई में भट्ठियाँ और लोहे की भाँतियाँ प्राप्त हुई हैं। हल से भैंसों को बाँधा जाता था और अनाज को गाहने व कुटाई के लिए अनेक चरणों में जानवरों का इस्तेमाल किया जाता था। सिंचाई के लिए तालाब तथा जलद्वार धाराओं के द्वारा/लघु बांधों दोनों प्रकार की तकनीक का इस्तेमाल किया जाता था। तमिलाकम् में कावेरीपट्टीनम के पास प्राचीन जलाशय के अवशेष मिले थे। चूँकि वर्षा का जल अपर्याप्त था, इसलिए सिंचाई का महत्व अधिक था।

लोग महत्वपूर्ण कृषि गतिविधियों जैसे पोधों की निराई, खेतों की सफाई, बीज बोने, फसलों की रखवाली, गाहने, फटकने व फसल को कूटने का काम करते थे। इसे मेनुपुलम तथा वनपुलम दोनों में देखा गया है। हमें इनके बारे में लोकगीतों से जानकारी मिलती है। यद्यपि इन उत्पादन कार्यों में पुरूष और स्त्री दोनों शामिल थे, लेकिन इन कार्यों में लैंगिक विभाजन था।

भूमि सामूहिक संपत्ति थी। कर्ज को कटम या कटन के रूप में जाना जाता था। अवनम या अंकटि वे मुख्य स्थान थे जहाँ इनका आदान–प्रदान होता था। ऋण को अभिव्यक्त करने के लिए कुरी एतिरप्पाई शब्द का प्रयोग होता था जिसे बाद में चुकाना होता था। वस्तु विनिमय का आधार लाभ कमाना कभी नहीं था, बल्कि आदान–प्रदान था। यह किसी वस्तु के उत्पादनकर्ता और विक्रेता दोनों के लिए था।

उज़ावर (हलवाहा) तथा वेलालर (भूपति) भूमि के किसान थे। कृषि के लिए श्रम का एक साधन हलवाहों का समूह भी था। अतियोर का अर्थ संभवतः गुलाम था और विनयवलर का अर्थ श्रमिक मजदूर था। 'मजदूरी' दर एवं उनकी स्थिति का विवरण ज्ञात नहीं है। पारिवारिक श्रम उत्पादन के लिए पर्याप्त नहीं था क्योंकि इससे अधिशेष का उत्पादन नहीं होता था। हालाँकि, इस सीमा के बावजूद, इन कृषि बस्तियों में विभिन्न समूह जैसे कलाकार, लोहार, बढ़ई, कवि, जादूगर, पुजारी, साधु, नर्तक एक साथ रह सकते थे। इस प्रकार, *संगम* रचनाएँ उन गतिविधियों के बारे में बताती हैं जिनसे कृषि की प्रक्रियाएँ संपन्न होती हैं।

4.5 तमिलाकम् में आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक संगठन

ग्रामीण व्यवस्था या 'उर' अनेक 'कुड़ी' या परिवार समूहों से निर्मित था जो विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में निपुण थे। 'किलार' उर का प्रधान होता था। प्रधान थोड़े बड़े घरों में रहते थे। विद्वान रिश्तेदारी को कुलों की एक महत्वपूर्ण विशेषता मानते थे। वे इस निष्कर्ष पर इस तथ्य से पहुँचते हैं कि कुल के प्रधान कोमकन या पेरूमकन

अर्थात् 'नायक पुत्र' कहलाते थे। इससे ज्ञात होता है कि प्रधान होना आनुवांशिक पेशा था। संभवतः *मारुदम* से राजाओं का उद्‌भव हुआ था, जिसे पुराने सरदारों और उनके तंत्र को हटाकर बनाया गया था। पूरे *तिनैं* क्षेत्र में राजनीतिक स्वरूप एक जैसा नहीं था। इस प्रकार, *संगम* साहित्य *कुरिंजी* तथा *मुल्लै*की कबिलाई विशेषता तथा *मारुदम* और *तिनैं* की शहरी विशेषता को दर्शाते हैं।*तिनैं* ने एकसाथ मिलकर नाडु का निर्माण किया। नाडु/नाटू के विपरीत काटू या वन क्षेत्र था। वहाँ भी विभिन्न प्रकार की बस्तियाँ थी जैसे ब्रह्मदेय और देवदान इत्यादि।

प्रधानों के लिए आय का मुख्य साधन भू–राजस्व था। तमिल साहित्य में, प्रधानों द्वारा प्राप्त दो प्रकार के योगदानों इरई और तिरई का उल्लेख मिलता है। जहाँ इरई एक नियमित योगदान था, वहीं तिरई एक प्रकार का उपहार। राजस्व के संग्रहण की विधि और दर के बारे में विशेष विवरण नहीं मिलता। राजस्व संग्रहण में शासकों से संयमित रहने की अपेक्षा की जाती थी जो दर्शाता है कि अधिकारियों द्वारा जोर–जबरदस्ती की जाती थी। उन संसाधनों का पुनर्वितरण कैसे किया गया जिन्हें उसकी आवश्यकता होती थी? संसाधनों के प्रसार में तोहफे सबसे प्रमुख साधन थे। प्रत्येक उत्पादक किसी अन्य से प्राप्त सेवा के बदले अपने उत्पादन का एक हिस्सा देता था। पुनर्वितरण का सबसे आसान तरीका भोजन कराना और कपड़े देना था। योद्धाओं को लूट या छापे के पहले या बाद में दावत देने की प्रथा थी। कई बार इन आयातित उपहारों में शराब, रेशम के कपड़े तथा सोने के गहनों को भी शामिल किया गया। ब्राह्मणों और योद्धाओं को अपनी सेवाओं के पारिश्रमिक के बदले भूदान और गोदान दिया जाता था। संपदा

और शक्ति के बल पर उपहार देने की पुनर्वितरण प्रक्रिया का निर्माण अभिषिक्तराजा (*वेंदार*), छोटे प्रधान (*वेलिर*) और समृद्ध कृषक गृहस्वामी (*वेलालार*) द्वारा किया गया था। भूमिप्राप्त करने वाले लोगों को भी भूमि से प्राप्त आय संग्रह का अधिकार था।

साधनों के कुशल पुनर्वितरण के लिए, सारे संसाधनों को किसी खास स्थान जैसे कि प्रधान के निवास पर एकत्र किया जाता था। संसाधनों के जमावड़े हमेशा कृषियोग्य क्षेत्र में लूट और डकैती के कारण बनते थे। अनाज और मवेशी लूट लिए जाते थे, शत्रुओं के खेत जला दिए जाते थे, बस्तियों में आग लगा दी जाती थी और समृद्ध बगीचों को हत्यारों द्वारा बर्बाद कर दिया जाता था। पहाड़ी और चारागाहों वाले क्षेत्रों के मारवा योद्धाओं को लूट के लिए नियुक्त किया जाता था।

मारवा लड़ाकुओं तथा ब्राह्मणों के बीच उनके प्रथाओं और पारिश्रमिक के अनुसार लूट और छापेमारी से प्राप्त धन का पुनर्वितरण किया जाता था। *संगम* कविताओं के संकलनों में गरीब किसानों पर हुए अत्याचारों का वर्णन किया गया है। भले ही, किसानों के लूटे जाने से शोषण और आंतक को बढ़ावा मिलता था, युद्ध को वीरता का पर्याय समझा जाता था। यहाँ तक कि युद्ध को संस्थागत बना दिया गया था। मृत योद्धाओं की स्मृति में निर्मित वीरगल, पंथ की वस्तुऐं तथा पूजा की वस्तुऐं बन गये थे। पाण गायकों ने सरदार और उनके सेनानियों के युद्ध जैसे गुणों की प्रशंसा में गीत गाए। एक ओर, संसाधनों की कमी के कारण लूट आवश्यक था, दूसरी ओर लूट और

हिंसा से संसाधनों का विनाश होता था। यह विरोधाभास सरदारों के स्तर पर पुर्नविवरण के तंत्र की एक केन्द्रिय विशेषता थी।

व्यापार एक महत्वपूर्ण और गैर–कृषि गतिविधि थी। इस काल में समुद्री व्यापार में काफी वृद्धि हुई। रोम से लाई गयी वस्तुओं में सिक्के, पुखराज, अच्छे किस्म के कपड़े, सुरमा की छड़े, मूँगा, कच्चा काँच, ताँबा, टिन, सीसा, शराब, गेहूँ, चीनी मिट्टी की चीजें इत्यादि शामिल थी। इनमें सोने के सिक्के के ढेर तथा विलासिता के सामानों की ज्यादा मांग थी। रोमन नाविकों के लिए शराब, गेहूँ तथा मिट्टी के पात्र खरीदे जाते थे, क्योंकि वे उस समय अनुकूल मानसूनी हवाओं के चलने तक वहीं ठहर जाते थे। स्थानीय मनकों तथा कांस्य उद्योग के लिए, कच्चे काँच, ताँबा, टीन और सीसे का व्यापार किया जाता था। मलमल, हरितमणि (beryl) तथा मोती विनिमय की वस्तुएँ थीं।वस्तु विनिमय प्रणाली प्रचलित थी और इसमें मधु और कंद–मूल के बदले मछली का तेल एवं ताड़ी; गन्ने और चावल के बदले हिरण के माँस तथा शराब के आदान–प्रदान के संदर्भ मिलते हैं। धान के बदले मछली का विनिमय भी प्रचलित था।

इस अवधि में शिल्प गतिविधियाँ भी प्रारंभ की गई। स्थानीय शासकों ने विनिमय प्रणाली को प्रोत्साहित किया क्योंकि इससे उनके सामाजिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार हुआ।

विनिमय को विभिन्न स्तरों पर देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, विनिमय का प्रचलन समुद्री व्यापार के स्तर पर था। इसी तरह, बुनियादी स्तर तक विनिमय होता

था। लोग अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए लंबी दूरी के व्यापार पर निर्भर नहीं थे। लंबी दूरी का व्यापार केवल विलासिता की वस्तुओं के लिए था। विलास की वस्तुओं के प्रचलन की प्रकृति भी काफी अलग थी; इसका संचालन आंतरिक क्षेत्रों में रिश्तेदारों, संरक्षणकर्ता तथा ग्राहकों के माध्यम से होता था। *कुरिंजी, मुल्लै* एवं *मारुदम* इलाकों के लोग विलासिता युक्त विदेशी व्यापार में संलग्न नहीं थे किंतु स्थानीय व्यापार पर निर्भर थे। शिल्प संघ की अनुपस्थिति का अर्थ था कि व्यापार की ज्यादातर जिम्मेदारी परिवार के हाथों में होती थी। विलासितायुक्त तथा विदेशी वस्तुओं मुख्य आयतित वस्तुएँ थीं। बंदरगाहों पर आने वाले वस्तुओं पर उल्गू पोरूल नामक कर लगाए जाते थे। आंतरिक शहर मुख्यतः उपभोग के केन्द्र थे, यद्यपि इनमें से कुछ जैसे कच्ची,उरेयूर और मदुरै क्षेत्र कपड़ा बुनने से संबंधित थे। पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसारतटिय शहर से आहत सिक्कें तथा अरिकामेडू से रोमन सिक्के तथा कुछ वस्तुएँ मिली हैं। अन्य वंशानुगत पेशों में योद्धा भी शामिल थे जो *तिनै* के लोगों को लुटरों से रक्षा करते थे। कवि तथा मनोरंजनकर्ता भी इसमें शामिल थे। *तिनै* क्षेत्रों में लोग एक खास व्यावसायिक समूहों में संगठित होकर रहते थे। लोगों और समुदायों के बीच एक मजबूत सामाजिक एकता होती थी।

लोहे के हथियारों के व्यापक उपयोग और दफनाने में लोहे के उपकरणों के इस्तेमाल का अर्थ था कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कभी लोहे गलाने वाले उद्योग का विकास हुआ होगा। यही बाद में वंशानुगत पेशे में परिवर्तित हो गये। ऐसी ही धारणा

घड़े बनाने के उद्योग से भी निर्धारित की जा सकती है। चूँकि ये आसानी से टूट जाते थे इसलिए इनकी मांग बढ़ती चली गई।

अपने रक्तसंबंधों, कुलदेवता की पूजा तथा जनजातीय प्रथा एवं व्यवहारों के कारण तमिलाकम् के प्रारंभिक समाज का चरित्र आदिवासी बहुल था। कृषि क्षेत्रों में मुख्य बदलाव देखे जा सकते हैं। पुरानी रिश्तेदारी टूट रही थी और ब्राह्मणवादी वर्ण व्यवस्था के कारण समाज में जटिलता उत्पन्न हो रही थी। इस प्रकार विभिन्न सामाजिक समुदायों में सामाजिक स्तरीकरण या असमानता दिखने लगी तथा समाज में ऊँच–नीच का भाव उत्पन्न होने लगा। ब्राह्मणों को श्रेष्ठता का आनंद लेने वाला विशिष्ट समूह बताया जाने लगा। यद्यपि *संगम* साहित्य में वैदिक बलिदानों का साक्ष्य मौजूद है, इसके बावजूद यह प्रथा लोकप्रिय नहीं हुई। ब्राह्मणों की उपस्थिति का अर्थ यह नहीं था कि वे स्वतंत्र रूप से किसी अन्य लोगों में शामिल नहीं हो सकते थे क्योंकि ब्राह्मणों का अन्य लोगों के साथ भोजन करने का संदर्भ मिलता है। उसी प्रकार, दूषित कार्य से संबंधित लोगों को अलग रहते हुए देखा गया। सातवीं शताब्दी में भूमि अनुदान के कारण ब्राह्मणों की ही तरह वेल्लाला भूस्वामी बनकर उभरे। जबकि दूसरी तरफ, कुयवन या कुम्हार, कोल्लन या लोहार और वन्नन या धोबी जाति व्यवस्थानुसार सबसे निचले पायदान पर रखे गए। भूस्वामी वेल्लालार तथा वेल्लाला किसान कृषक समाज में प्रमुख उत्पादक समुदाय थे। शिल्प विशेषज्ञता को केवल मौलिक और कृषि उत्पादन में सहायक का दर्जा दिया गया। इसके अंतर्गत, बढ़ई और लोहार (कडलाओ) का उल्लेख किया जा सकता है। विस्तृत परिवार उत्पादन की एक इकाई थी। बुनाई भी

एक अन्य पेशा था। गाँवों के धार्मिक अनुष्ठान और प्रथा पालन में आदिवासी परंपराओं का ही अनुसरण किया गया, जिसमें वेल्लन, वेलतुवन आदि समूहों की उपस्थिति को महत्वपूर्ण माना जाता था। वे अलौकिक तत्वों एवं उनके प्रबंधन काध्यान रखते थे। हालांकि, यह समाज पुजारी प्रधान नहीं था। पर्याप्त अधिशेष से व्यापारिक समूहों में समृद्धि आई। वे अपने वस्तु व्यापार के नाम से ही जाने जाते थे। यही कारण है कि वे *उमनन* (नमक व्यापारी), *कोगलावनिकन* (मक्का व्यापारी),*अरूवैवनिकन* (कपड़ा व्यापारी), *पोनवनिकन* (सोना व्यापारी) इत्यादि के नाम से जाने जाते थे। सदी के अंत तक ये सारे व्यापारी इस वर्ण व्यवस्था का हिस्सा बन गए और इसका प्रसार समूचे दक्षिण भारत में हो गया। तमिल व्याकरण का सबसे प्रारंभिक कार्य, *तोलकापियम*, तमिल समाज को चार वर्णों में विभाजित होने का वर्णन करता है। इस पुस्तक के अनुसार, व्यापारी वैश्य समूह से संबंधित थे। उत्तर भारतीय क्षत्रियों की ही तरह, *मारुदम* कृषि क्षेत्र के प्रधान खुद को सूर्यवंश और चंद्रवंश के वंशज होने का दावा करने लगे। इस प्रकार, हम पाते हैं कि *मारुदम* कृषि समाज मुख्यतः प्राचीन आदिवासी प्रथाओं एवं ब्राह्मणवादी आदर्शों एवं विचारों का समागम था।

सामान्यतः, एक बड़े वृक्ष के नीचे ही प्रत्येक गाँव के निवासियों की आम बैठक हुआ करती थी। यहीं पर सारे गाँव वाले मिलते और खेल एवं सामुदायिक गतिविधियों में हिस्सा लेते। ऐसी छोटी–छोटी सभाएँ ही बाद में विकसित होकर राजनीतिक संगठनों के रूप में परिणत हो गई।

इन सामाजिक जटिलताओं को समझने का दूसरा तरीका था महापाषाणकालीन अवशेषों का अध्ययन जिसे *संगम* साहित्य रचना के काल के समकालीन माना जा सकता है। इस काल में कृषि एवं लड़ाकू समूहों की भी पहचान की गई हैं।

व्यापार में वृद्धि के साथ ही, शहरी क्षेत्रों में बौद्ध और जैन धर्म का प्रसार हुआ। जैन धर्म जहाँ शहर के आंतरिक भागों में फैला, वही बौद्ध धर्म का प्रसार तटों से सटे कस्बों में हुआ। इन धर्मों का पालन मुख्यतः व्यापारी, शिल्पकार तथा शाही परिवार करते थे। हमने पहले भी, प्रत्येक *तिनैं* क्षेत्र में औरतों के कार्य को देखा है। इसके अतिरिक्त भी, औरतों ने विभिन्न प्रकार के उत्पादों जैसे ताड़ी, दही, दूध के अन्य उत्पाद, मांस इत्यादि का भी क्रय–विक्रय किया।

4.5.1 *तिनैं* व्यवस्था का पतन

पाँचवी से सातवीं शताब्दी तक कृषि उत्पादन तरीकों में एक प्रकार का बदलाव देखा गया जिसका सीधा संबंध जाति व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण से था। कृषि समाज को अब जाति और पितृसत्ता के व्यापक ढ़ांचे के भीतर रहना पड़ा। पवित्रता और प्रदूषण जैसी अवधारणाओं का इस्तेमाल सभी जाति की औरतों के लिए किया गया और कुछ समूहों को तो अछूत तक निर्धारित कर दिया गया। ऐसा विशेषकर उत्तरवर्ती *संगम* साहित्य में देखा गया, क्योंकि पहले की तुलना में उसमें महिलाओं की रचनाएँ नदारद थीं। इन रचनाओं में महिलाओं के गुणों की प्रकृत्ति का ह्रास भी होते देखा गया तथा सारा ध्यान उन्हें दूषित होने या नियंत्रण करने पर केंद्रित हो गया। हालांकि, अन्य कारणों से एक

निश्चित अवधि की समाप्ति के बाद *तिनै* व्यवस्था नहीं चल सकीं। प्रथमतः विदेशी व्यापार में पतन से शहरी विकास का पतन हुआ। ऐसा संभवतः धान उत्पादक प्रदेशों में सांस्थानिक नियंत्रण की कमी के कारण हुआ होगा। जब प्रधानों द्वारा धान उत्पादक क्षेत्रों पर स्थायी कब्जा जमाने का अधिक प्रयास किया गया तो संकट की स्थिति उत्पन्न हुई। इससे *वेंदारों* का महत्व समाप्त हो गया जिससे उनका सांस्थानिक नियंत्रण कमजोर हो गया।

हालांकि, सामंतवाद के उदय के साथ, छोटे चारवाहों का महत्व समाप्त हो गया। कुछेक ने जाति व्यवस्था से दूर रहने का निर्णय लिया और उन्हें जाति–व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर धकेल दिया गया, जबकि कुछ कृषकों के रूप में बने रहे।

बोध प्रश्न–1

1 सही (✓) या गलत (✗) वाक्यों को चिहिन्त करें।

(क) दक्कन, आन्ध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल ये पाँच *तिनै* क्षेत्र थे। ()

(ख) *पालै* क्षेत्र एक ऋतु आधारित घटना था। ()

(ग) दक्षिण भारत में कृषि के तीसरे चरण में कृषि क्षेत्र में गैर–कृषक समूहों का उद्भव हुआ। ()

(घ) तमिल व्याकरण की प्राचीनतम रचना *तोलकापियम* है। ()

(ङ) वेल्लालार तथा वेल्लाला गाय चराने वाले लोग थे। ()

(च) दक्षिण भारत में *वेंदार* प्रमुख राजा थे और *वेलिर* छोटे प्रधान थे। ()

2 एक विशेष प्रकार के *तिनैं* निर्माण को किन कारकों ने प्रभावित किया?

_____

_____

_____

_____

_____

3 प्राचीन दक्षिण भारत में गाँवों की छः विशेषताओं की सूची बनाएँ।

_____

_____

_____

_____

_____

4.6 दक्कन में कृषि व्यवस्था का विस्तार

जैसा कि आप पढ़ चुके हैं, सामान्य युग की प्रारंभिक शताब्दियों में दक्कन में सातवाहन जैसे शक्तिशाली साम्राज्य का उदय हुआ। दक्कन और दक्षिण भारत में लौहयुग स्थलों

में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि का सूचक हैं। लोग झूम खेती तथा पशुपालन से सीधे स्थायी कृषि अर्थव्यवस्था का निर्माण पर निर्भर हो गए। कुल मिलाकर, सातवाहन काल में नदी घाटियों, तटों और पठारों पर बस्तियों की संख्या में वृद्धि हुई।

टेर, नेवासा तथा भोकरदन की खुदाई से हमें पता चलता है कि सातवाहन काल में अनेक प्रकार के अनाजों जैसे गेहूँ, जौ, चावल, बाजरा, सौरघम, चना, मटर और भारतीय बेर इत्यादि की खेती की जाती थी। सातवाहन काल की भौतिक संस्कृति प्राचीन महापाषाण काल के लौह युग से बेहतर थी। खुदाई में हल, हँसुआ, कुदाल, कुल्हाड़ी और तीर–शीर्ष बरामद हुए। अब तक धातुक्रिया में काफी प्रगति हो चुकी थी तथा कोटर युक्त कुदाल का इस्तेमाल होने लगा था। सातवाहन काल में दक्कन में सोने का काम होने के प्रमाण मिलते हैं। सिंचाई की सुविधा से लोग परिचित थे। कुँओं और तालाबों से पानी निकालने में चक्कों का इस्तेमाल हो चुका था। आंध्र के सिक्कों पर जलयंत्रों के उकेरे हुए चित्र मिलते हैं। कुछ इतिहासकारों का मत है कि कुँए की खुदाई एक मुश्किल प्रक्रिया थी और इसके लिए किसी राजा या भूस्वामी के सहयोग की आवश्यकता होती थी। दक्कन के लोग धान की रोपाई से परिचित थे। गोदावरी और कृष्णा नदी घाटी मुख्य रूप से चावल उत्पादन क्षेत्र थे। कपास काली मिट्टी में उगाई जाती थी और आंध्र क्षेत्र के कपास उत्पाद विदेशों तक में लोकप्रिय थे। नारियल, आम एवं अन्य पौधों के बागों को लगाना प्रचलित था।

'*पेरिप्लस ऑफ द इरिथ्रियन सी* में दासों के इस्तेमाल का उल्लेख है और दक्कन में मजदूर और गुलाम ही श्रम के स्रोत थे। धानढ्य जमींदार या व्यापारी *गहपति* के नाम से जाने जाते थे। एक अभिलेख के अनुसार, उसवदत्त, पश्चिमी दक्कन के क्षत्रप शासक नाहपण के दामाद, ने ब्राह्मण से जमीन खरीद कर एक बौद्ध संघ को दान में दी थी। इससे पता चलता है कि भूमि का निजी स्वामित्व अस्तित्व में था। इस सौदे से निजी मालिक 40,000 काहपण सिक्के प्राप्त करता था। एक अन्य उदाहरण में, रानी नयनिका की नानाघाट अभिलेख में ब्राह्मणों के वैदिक अनुष्ठान/बलि के लिए 13 गाँवों को उपहार में दिए जाने का वर्णन है। त्रिरश्मी पहाड़ी पर रहने वाले बौद्ध भिक्षुओं को गौतमीपुत्र सातकर्णी ने 200 निवर्तनों की विस्तृत भूमि अनुदान में दी। अपराजिता संप्रदाय को भूमि अनुदान में दिए जाने का एक उदाहरण भी मिलता है। इस प्रकार, सातवाहनों ने पहली शताब्दी बी.सी.ई. के प्रारंभ से ही भूमि दान की प्रथा शुरू कर दी। इस प्रथा को राज्य द्वारा सुनिश्चित उत्पादन योग्य भूमि के निरक्षण की एक विधि के रूप में देखा जाना चाहिए जब कृषि का विस्तार हो रहा था। पहली शताब्दी बी.सी.ई. के बाद से, आम आदमियों द्वारा भी भूमि अनुदान में दिए जाने का उदाहरण मिलता है।

सातवाहन प्रशासन मुख्यतः स्थानीय सामंती शासकों के हाथ में था। राजा कर में बढ़ोतरी कर देते थे। सातवाहन काल में भूमि मापने की प्रक्रिया को *हल* कहा जाता था। हल के उपयोग किए जाने का साक्ष्य है। *कर, देय, मेय, भाग* जैसे कर लगाए जाते थे। इन करों का वास्तविक महत्व या राज्य द्वारा दावा किए गए राजस्व की मात्रा ज्ञात नहीं है। कुछ सातवाहनों के ग्रामीण प्रदेश *गौल्मिक* के अंतर्गत आते थे जो लघु

सैन्य इकाई के प्रभारी होते थे; जब ब्राह्मणों और बौद्ध मठों के लिए जमीन दी जाती थी, राज्य को सुनिश्चित करना होता था कि ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत सेना बल उसमें हस्तक्षेप न करें।

दान लेने वालों को कुछ छूट थी जो इस प्रकार हैः

1. किसी प्रकार की शुल्क वसूली के लिए राजा के सैनिकों का प्रवेश वर्जित;

2. गाँव के किसी भी वस्तु को शाही सैनिकों द्वारा लेने से मनाही।

इससे यह पता चलता है किः

1. साधारणतया, सैनिक यदि गाँव में आ जाते तो, गामीणों को कुछ धनराशि या वस्तु देनी पड़ती थी, या

2. सैनिकों को राजस्व वसूल करने का अधिकार था।

4.7 दक्कन में सामाजिक जीवन

दक्कन में, सातवाहनों ने ब्राह्मवाद को संरक्षण प्रदान किया। वे बौद्ध और जैन धर्म के भी संरक्षक थे। इस क्षेत्र में, दिगम्बर संप्रदाय के कुछ मशहूर गुरू भी फले–फूले। कोंडाकुंदाचार्य, *मूलसंघ* के संस्थापक, जो दक्षिण में प्रसिद्ध हो गए और दक्कन में रहते थे। बौद्ध धर्म का *महायान* पंथ बहुत प्रसिद्ध था। *महायान* पंथ के सबसे बड़े प्रतिपादक, आचार्य नागार्जुन दक्कन में ही फले फूले। विहारों तथा स्तूपों ने इसी काल में सबसे

ज्यादा अनुदान प्राप्त किया। राजनीतिक संरक्षण प्राप्त होने के कारण सातवाहन काल में बौद्ध धर्म बहुत प्रसारित हुआ। ब्राह्मणवाद को भी राज्य का संरक्षण प्राप्त हुआ। कुछ विदेशियों जैसे यवन, शक और पहलवियों द्वारा ब्राहणवाद या बौद्ध धर्म अपनाया गया जिससे एक उदारवादी वातावरण का निर्माण हुआ। समाज में इन तत्वों की उपस्थिति ने जाति नियमों को काफी लचीला बना दिया। समाज में चुर्तवर्ण विभाजन का विचार मौजूद था। लोगों को उनके पेशे के नाम से बुलाने की प्रथा अत्यधिक प्रचलित थी। *हलक* (हलवाहा), *गोलिक* (गड़ेरिया), *वर्धकी* (बढ़ई), *कोलिक* (बुनाई), *तिलपिसक* (तेल निकालने वाला), और *कमार* (लोहार) ऐसे ही पेशानुगत नाम थे। संयुक्त परिवार व्यवस्था का प्रचलन था और समाज पितृसत्तात्मक था। कभी–कभी महिलाएँ अपने पतियों की उपाधियों जैसे *भोजिकी, महारणीनी, महासेनापतिनी* आदि को अपनाती थी।

इस काल में दक्कन में कुछ नए तत्वों को उभरते देखा जा सकता है। इसी समय से धार्मिक लाभार्थियों जैसे ब्राह्मणों एवं बौद्ध मठों को भूमि अनुदान यहां तक की पूरे गांवों का अनुदान आम बात हो गई थी। भूमि के साथ ही, गाँवों से राजस्व वसूली के अधिकार तथा खानों के ऊपर अधिकार के रूप में उन्हें एक निश्चित प्रकार की आर्थिक सुविधाएँ दी जाने लगीं। भूमि अनुदान में किसानों के वित्तीय तथा प्रशासकीय अधिकार शामिल थे। इन अनुदानों के बाद ही गाँवों को प्रशासन के अधिकारियों तथा सैनिकों को अनिवार्य भुगतान से मुक्त किया जाता था। अतः अस्थायी हल के रूप में शुरू हुई प्रथा अब स्थायी बन गई। लाभार्थी शक्तिशाली जमींदार के रूप में उभरे तथा एक प्रकार की नई भूमि एवं आर्थिक व्यवस्था का उद्भव हुआ। ब्राह्मण और बौद्ध भिक्षु, जो

भूमि अनुदान में प्राप्त करते थे, अब अपने जमीन पर खेती के लिए मजदूरों को काम पर लगाने लगे क्योंकि वे खुद खेती का काम नहीं करते थे। इस प्रकार, भूमि के वास्तविक मालिक (हलवाहे) को उसके जमीन और उत्पाद से अलग कर दिया गया। इससे जंगलों, चारागाहों, तालाबों और जलाशयों पर सामूहिक अधिकार समाप्त हो गए। जमीन पर खेती करते किसान अब नए मालिकों के प्रति उत्तरदायी हो गए। ये नई विशेषताएँ सदियों तक चलती रहीं और इसे एक नई सामाजिक आर्थिक संरचना का निर्माण हुआ जिसे विद्वानों द्वारा सामंतवाद कहा गया।

बोध प्रश्न–2

1 सातवाहन काल में भूमि अनुदान की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं?

_____

_____

_____

_____

_____

2 दक्कन के कृषि बस्तियों में उपकरण, औजार और सिंचाई सुविधाओं के बारे में पाँच पंक्तियाँ लिखें।

_____

_____

_____

_____

_____

4.8 सारांश

तिनैं विचारधारा का आधार जीविकोपार्जन के साधन तथा भौगोलिक परिस्थितियों के बीच के पारस्परिक संबंधों पर निर्भर था। प्रत्येक *तिनैं* का संबंध दूसरे *तिनैं* से था जिसके कारण उनके बीच सहजीवि विनिमय का संबंध स्थापित हुआ। इनका गठन इतना व्यापक था जिसकी कोई स्पष्ट सीमा नहीं थी। *तिनाईयों* के आपसी संबंध हमेशा सौहार्दपूर्ण नहीं रहे और लूटमार उनकी एक सामान्य विशेषता थी। लगभग उसी समय, दक्कन में सातवाहन उभर रहे थे और उन्होंने भूमि अनुदान व्यवस्था की शुरूआत की। समय के साथ भूमि अनुदान की प्रथा जड़वत होती गई जिसके फलस्वरूप ग्रामीण इलाकों में आमूलचूल परिवर्तन हुए।

4.9 शब्दावली

***तिनैं* व्यवस्था** : विभिन्न परस्थितिकी क्षेत्रों के भिन्न समूहों के बीच विनिमय प्रणाली।

तमिलाकम् : कन्याकुमारी की चोटी तथा वेंकटम के पहाड़ियों के बीच का क्षेत्र।

काटने और जलाने की खेती : कृषि की ऐसी पद्धति जिसमें मौजूदा पेड़ों को जलाकर नष्ट करना ताकि नये बीजों को बोया जा सके।

पण : प्राचीन तमिलाकम् के गायक जो प्रधानों की प्रशंसा गाकर करते थे।

झूम खेती : कृषि की एक विधि जिसमें समय–समय पर खेती की जगह को स्थानांतरित किया जाता है। यह एक ही भूखंड को निरंतर प्रयोग में लाने के कारण भूक्षरण की प्रक्रिया से बचाता है।

जादू–टोना/कुलदेवता की पूजा : आदिवासियों के प्रमुख प्रतीकों की पूजा।

मुखियातंत्र : वंशानुगत दर्जा वाला एक ऐसा समाज जिसका नियंत्रण एक सरदार करता है और लोगों से स्वैच्छिक संपदा संचय करता है।

मुवेंदर : त्रिसैद्धांतिक शासकों का समूह अर्थात् चोल, चेर और पांड्या।

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1 (क) ×

(ख) ✓

(ग) ✓

(घ) ✓

(ड़) ×

(च) ✓

2 भाग 4.3 देखें।

3 भाग 4.4 देखें।

बोध प्रश्न–2

1 भाग 4.6 और 4.7 देखें।

2 भाग 4.6 देखें।

4.11 संदर्भ ग्रंथ

देवादेवन, एम.वी. (2006). लाईंग ऑन द ऐड्ज ऑफ द बर्निंग ग्राऊंडः रीथिकिंग तिनैं. *जर्नल ऑफ द इक्नोमिक एंड सोशियल हिस्ट्री ऑफ द ओरियन्ट*, 49 (2), 199–218.

गुरुक्क्ल, आर. (1987). फॉर्मस ऑफ प्रोडक्शन एंड फोर्सेस ऑफ चेन्ज इन एशिंयट तमिल सोसाइटी. *प्रोसीडिग्स् ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस*, 48: 76–81.

रामास्वामी, वी. (2007). *हिस्टोरिकल डिक्शनरी ऑफ द तमिल्स्*. लैनहैमः द स्केरक्रो प्रैस इन्क.

इकाई 5 व्यापार संजाल (Networks) और शहरीकरण*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 स्त्रोत

5.3 राजनैतिक पृष्ठभूमि

5.4 200 बी.सी.ई.–300 सी.ई. में नगरीकरण

5.5 व्यापार

5.6 वाणिज्यिक संगठन

5.7 बंदरगाह

5.8 आयात और निर्यात की वस्तुएँ

5.9 सिक्के

5.10 सारांश

5.11 शब्दावली

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

*डा. सयन्तनी पाल, एसोसिएट प्रोफेसर,, डिपार्टमेन्ट ऑफ एनशीएंट हिस्ट्री, कल्चर एन्ड आर्ककियोलोजी, यूनिवर्सिटी ऑफ केलकत्ता, कोलकाता

5.13 संदर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इसके बारे में जान सकेंगेः

- 200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. तक भारत में व्यापार और शहरी केन्द्रों के विस्तार के विभिन्न आयाम;
- व्यापार और व्यापारी, व्यापार मार्ग, बन्दरगाह, परिवहन और संचार सुविधाएँ, और निर्यात और आयात की वस्तुएँ;
- इस अवधि में नगरीकरण और इसने कैसे एक अखिल भारतीय चरित्र प्राप्त किया;
- व्यापार में राजनैतिक अधिकारियों की रूचि; और
- भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में नगरः साहित्यिक और पुरातात्विक रूपरेखाएँ।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में, हम काफी हद तक अर्थव्यवस्था के दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों अर्थात् व्यापार और नगरीकरण पर विचार–विमर्श करेंगे। इस अवधि में अर्न्तमहाद्वीपीय संस्कृति सहित विभिन्न संस्कृतियों के बीच अंतःक्रिया संपन्न हुई जिसमें व्यापारिक समुदायों ने प्रमुख भूमिका निभाई।

पहले की इकाई में, आपने कृषि बस्तियों और कृषि समाज के बारे में पढ़ा। इस इकाई में हम व्यापार और नगरीकरण के अलावा इस क्षेत्र में हो रहे उनसे संबंधित अन्य परिवर्तनों को भी दृष्टिगत करेंगे। उदाहरण के लिए महापाषाणिक काल के दौरान सिंचाई के साथ–साथ लौह प्रौद्योगिकी की शुरूआत ने कुछ क्षेत्रों में कृषि अधिशेष को जन्म दिया। दूसरे, प्रायद्वीप भारत में मौर्यो के विस्तार के साथ, उत्तर भारत के साथ अधिक सम्पर्क संभव हो पाया। जैसा कि *अर्थशास्त्र* में प्रकाश डाला गया है व्यापारी और अन्य लोग दक्षिणापथ जैसे विभिन्न मार्गों से इधर–उधर गये। भारत में विनिमय की पहले की प्रणालियों में गहरा परिवर्तन आया। तीसरा, भारत–रोमन व्यापार के उत्कर्ष के कारण व्यापार और शहरी केन्द्रों का विस्तार हुआ। चौथा, शिल्प विशेषज्ञता से संबंधित विशेषता जिसका सकेंत मिट्टी के बर्तनों के निर्माण, मनका बनाने, काँच बनाने और कपड़े की बुनाई जैसे शिल्पों के विकास से मिलता है, स्थानीय विनियम या लम्बी दूरी के व्यापार में एक महत्वपूर्ण पहलू बन गया। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि भारत के सभी कोने इन परिवर्तनों से समान रूप से प्रभावित नहीं थे। कुछ क्षेत्रों में संस्कृति के पूर्ववर्ती रूप कायम रहे।

आइये हम विभिन्न शीर्षकों के अर्न्तगत व्यापार और नगरीकरण की मुख्य विशेषताओं पर नजर डाले।

5.2 स्त्रोत

इस अवधि में शिलालेखों की संख्या में वृद्धि हुई। उनमें से अधिकांश दान रिकार्ड हैं जिससे दाता ने अपनी पारिवावारिक पहचान, मूल स्थान और व्यवसाय के बारे में विवरण दिया है। इस तरह से वे इस अवधि के लिए एक महत्वपूर्ण स्त्रोत साबित होते हैं। इस अवधि में धातु मुद्रा का बढ़ता उपयोग भी दिखाई पड़ता है। उत्खन्न या भंडार के रूप में बड़ी संख्या में सिक्के बरामद हुए है जो हमें इस अवधि में व्यापार और वाणिज्य के बारे में बताते हैं। पुरातात्विक खोजों और उत्खन्नों ने बस्तियों के प्रकार और कलाकृतियों पर प्रकाश डाला है जो नगर योजना के प्रकारो, दैनिक उपयोग की वस्तुएं जैसे कि बर्तनों के साथ–साथ विलासिता की वस्तुएं जैसे कि कीमती और अर्ध कीमती पत्थरों के आभूषण जो उपयोग में थे, के बारे में सकेंत दे सकते हैं। दो प्रमुख धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ, *मनुस्मृति* और *याज्ञवलक्यसमृति,* अपने अन्तिम रूप में इस अवधि में संकलित किये गए थे। *महाभारत* के शान्तिपर्व और अनुशासन पर्व की रचना भी इसी काल में हुई थी और उनमें दान देने की प्रक्रिया के प्रति दृष्टिकोण जैसे आर्थिक आँकड़े हैं। हालाँकि, यह याद रखना चाहिए कि इन ग्रन्थों की प्रकृति निर्देशात्मक है और जरूरी नहीं कि वह समाज में व्याप्त वास्तविक तथ्यों का प्रतिबिंब हो। विदेशी वर्णनों में विभिन्न संदर्भ भी हैं जो बाहरी जगत के साथ भारत के पारस्परिक प्रभाव के बारे में बताते है। उदाहरण के लिए हम स्ट्रेबो की *ज्योग्राफीकोन,*डायोडोरस की*बिबलियोथेका हिस्टोरिका,* प्लीनी का *नेचुरलिस हिस्टोरिया,* एक अज्ञात लेखक की *द*

पेरीप्लस टेस एरिथ्रस थेलासेस (पेरिप्लस ऑफ द ऐरिथ्रियन सी) और टोलिमी की *ज्योग्राफीक उपेजेसिस* का उल्लेख कर सकते है।

5.3 राजनैतिक पृष्ठभूमि

राजनैतिक रूप से इस अवधि ने मौर्यों के शाक्तिशाली शासन का पतन और राज्य नियंत्रित अर्थव्यवस्था की समाप्ति को देखा। उत्तर में शुंग, कण्व, चेदि और नाग जैसे राजवंशों ने सत्ता संभाली। दक्कन में सातवाहन और इक्ष्वाकु शक्तिशाली थे। सुदूर दक्षिण में चोल, चेर और पांडय महत्वपूर्ण हो गये। कुछ विदेशी तत्वों जैसे कि यूनानी, शक, पहलव और कुषाणों ने भारत के उत्तर पश्चिमी, पश्चिमी और मध्य भागों में इस अवधि के वाणिज्यिक लोकाचार में भाग लिया।

5.4 200 बी.सी.ई.–300 सी.ई. में नगरीकरण

समीक्षाधीन अवधि में कृषि विस्तार से अधिशेष का उत्पादन हुआ जिसने गैर उत्पादकों जैसे कारीगरों और व्यापारियों को व्यापार और वाणिज्य में स्वयं को समर्पित करने में सक्षम बनाया। शहर, व्यापार और वाणिज्य, शिल्प विशेषज्ञता और प्रशासन के केन्द्र थे। उत्तर–पश्चिम में तक्षशिला एक प्रसिद्ध शहर था। इस शहर के अवशेषों की खुदाई तीन टीलों अर्थात भीर, सिरकप और सिरसुख से की गई है। सिरकप के टीले से 200 बी. सी.ई. से 200 सी.ई. तक की कलाकृतियाँ प्राप्त हुई हैं। शहर ने इन्डो–ग्रीक की अवधि से नगरीकरण के लक्षण दिखाने शुरू कर दिये लेकिन शहर की दीवारों के साथ किलेबन्दी इन्डो–पार्थियन शासकों ने की थी। अच्छी तरह से बनाई गई सड़कें और

योजनाबद्ध घर ग्रीक और हेलेनिसटिक प्रभावों को दर्शाते हैं। अहिच्छत्र में 200 बी.सी.ई. तक आते–आते एक नई सड़क बनाई गई थी। उत्तर–पूर्व बिहार में वैशाली के लिच्छवी राज्य में किलेबन्दी की दीवार को 200 बी.सी.ई. से 200 सी.ई. तक कम से कम तीन बार बनाया गया था। उडीशा के शिशुपालगढ़ में नगरीकरण के चिन्ह 300 बी.सी.ई. के बाद से देखे जा सकते हैं लेकिन यह 200 बी.सी.ई. से तेजी से आगे बढ़ा। 200–100 बी.सी.ई. के बीच बनाई गई एक बड़ी दीवार पहले कच्ची इटों की और बाद में पक्की ईटों के साथ बनाई गई थी। शिशुपालगढ़ के प्रारंभिक ऐतिहासिक शहर में एक उल्लेखनीय बड़ा और अलंकृत प्रवेश द्वार था।

इस अवधि के दौरान मथुरा उत्तर भारत में सबसे अग्रणी शहर के रूप में उभरा। यह शहर शक, पहलव और कुषाण शासन के दौरान विकास के शिखर पर पहुंच गया। चूंकि इन शासकों का उत्तर–पश्चिम के साथ घनिष्ट सम्बन्ध था इसलिए मथुरा जो हालाँकि गंगा–यमुना दोआब में स्थित था, उत्तर–पश्चिम के ऐतिहासिक विकास के साथ निकटता से जुड़ गया। सोंख में शहर के अवशेष कुषाण काल के दौरान विकास के उच्चतम चिन्हों को दिखाते हैं। आवासीय इमारतें कच्ची इटों और पक्की इटों दोनों से बनी हुई थी। शहर की दीवारों को भी पुर्ननिर्मित और चौड़ा किया गया था। *अगूंत्तर निकाय* (छटी शताब्दी बी.सी.ई.) में मथुरा का वर्णन अनुकूल नही है। यह मथुरा की धूल भरी सड़कों, खराब परिवहन और खराब आर्थिक स्थिति का वर्णन करता है जहाँ भिक्षुओं को आसानी से भिक्षा भी नहीं मिलती थी। शहर की इस खेदजनक तस्वीर की तुलना तीसरी शताब्दी सी.ई. के बौद्ध ग्रन्थ *ललितविस्तार* के वर्णन के साथ उल्लेखनीय

रूप से की जा सकती है। शहर का आकार बढ़ गया था; यह बहुत अधिक आबाद था; और भिक्षा आसानी से उपलब्ध थी।

पूर्व में सबसे महत्वपूर्ण शहर चन्द्रकेतूगढ़ था। कोलकता से उत्तर–पूर्व में 23 मील की दूरी पर स्थित यह स्थल एक ऊँची मिट्टी की दीवार से घिरा हुआ है। स्थल का सीमा विस्तार दर्शाता है कि शहर बड़ा था। इसके प्रारंभिक स्तर पर, उत्तरी काले पॉलिशदार मृदभांड (NBPW) जो एक शहरीकरण से संमबंधित मृदभांडहै, पाए गए। शहर हालाँकि प्रथम शताब्दी में ही अपने पूर्ण आयाम और शहरी चरित्र तक पहुँच पाया था। इस चरण में मिट्टी के बर्तन, पकी हुयी मिट्टी की मूर्तियों, ढाले गये ताँबे के सिक्के पाए जाते हैं। मदिरा के गिलास शहर के निवासियों द्वारा बिताए गए अवकाश काल का सकेंत देते हैं। पकी हुयी मिट्टी की कलाकृतियाँ भी परिष्कृत हैं और शहरी आभिजात्य वर्गों की अभिरूचियों का एक विचार पेश करती है।

निचले बंगाल के भाग से मंगलकोट का स्थल एक से तीन शताब्दी सी.ई. के स्तर पर शहरीकरण का प्रमाण दिखाता है। पकी हुयी मिट्टी की कलाकृतियाँ, कीमती पत्थर के हार, पीने के गिलास, चित्रित डिजाइन वाले लाल मृद भांड के सेचक, ढाले गये ताँबे के सिक्के और मोहरें शहरी जीवन की गवाही देती है। मकान इटों से बने थे और उनके बगल में ही ईटों से बने कुएँ थे।

दक्कन में नेवासा, टेर और सतनीकोटा में उत्खनन ने शहरी चरण के प्रमाण दिए हैं। सतनीकोटा करनूल जिले में स्थित एक सातवाहन शहरी केन्द्र था। यह किले बन्द

शहर तुंगभद्रा के दाहिनें किनारे पर स्थित था। यह पहली शताब्दी बी.सी.ई. से तीसरी शताब्दी सी.ई. की अवधि के दौरान फला–फूला। दीवार के अलावा यह शहर एक खाई से घिरा हुआ था। किले की दीवार पकी ईटों से बनी थी और इसके दक्षिण में एक भव्य प्रवेश द्वार था। कीमती पत्थर के मनकों का निर्माण शहर में एक महत्वपूर्ण गतिविधि थी।

नासिक से शक और सातवाहन शिलालेख *नगर* और *निगम* का उल्लेख करते हैं। शक महाक्षत्रप रूद्रदमन ने जंगली जानवरों और चोरों से *नगर* और *निगमों* की रक्षा करने का दावा किया हैं। गोतमीपुत्र सतकरर्णी के शासनकाल में सातवाहन शक्ति के विस्तार के साथ नगरीकरण की प्रक्रिया पूर्वी दक्कन तक फैल गई। अमरावती, भट्टीपरोलू, सलीहून्डम, नागार्जुनीकोंडा कृष्णा डेल्टा में वे स्थल है जो निश्चित रूप से शहरी थे। *पेरोप्लस,* टोलेमी के वर्णन और सिक्के और शिलालेख इस क्षेत्र में फलती–फूलती कृषि और व्यापार की ओर इशारा करते हैं। धन्यकटक कृष्णा नदी की एक नौगम्य धारा पर स्थित एक शहर था। यहाँ पाए गए शिलालेखों में व्यापारी और उनकी श्रेणियों का भी उल्लेख है। शहर पहाड़ियों द्वारा तीन तरफ से सुरक्षित था। शहर के अन्दर एक चार दीवारी का घेरा शायद शाही निवास था। नागार्जुनीकोन्डा इक्ष्वाकु वंश (225–350 सी. ई.) की राजधानी था। अधिकांश निवास शहर के पूर्वी भाग में स्थित थे। सड़कों की सिधाई उल्लेखनीय थी। यह बौद्ध और ब्राहमणवादी धर्म का केन्द्र भी था। कम से कम एक हजार दर्शकों को बैठने की व्यवस्था करने वाला एक ओपन एयर सभामंडप था जो हमे रोमन एम्पीथियेटर्स की याद दिलाता है।

शहरीकरण की प्रक्रिया सुदूर दक्षिण तक भी पहुँची। दो महान शहर मदुरा और कावेरीपट्टिनम थे। तमिल कविता *मदुरईकांची* में मदुरा शहर का विस्तृत्त वर्णन है। कावेरीपट्टिनम उत्तरी तमिलनाडु में स्थित चोलो का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह शहर था। कावेरीपट्टिनम का वर्णन *पदिनापल्लई* और तमिल महाकाव्य *सिल्प्पादीकारम* में मिलता है जो कुछ समय बाद का है। इस ग्रन्थ में कावेरीपट्टिनम एक विकसित और समृद्ध शहर प्रतीत होता है। यह इसके एक महान शहर के रूप में कृमिक परिवर्तन को इंगित करता है। *सिलप्पादीकारम*शहर के विभिन्न भागों में व्यापारियों,कारीगरों और मछुआरों की बस्तियों का उल्लेख करता है जबकि एक हिस्सा केवल यवन व्यापारियों के निवास के लिए था। शहर एक बन्दरगाह भी था। इसमें समुद्री व्यापार के महत्व को इंगित करने वाला एक प्रकाश घर(लाइट हाउस) था। खुदाई से बन्दरगाह के पास एक भंडारग्रह का पता चला है। महाकाव्य कविता में बड़ी संख्या में सार्वजनिक स्नान स्थल और जलाशयों का उल्लेख है। यह क्षेत्र से प्राप्त आंकड़ों से मेल खाता है जिससे एक वर्ताकार ईंट की संरचनाओं का पता चला हैं जिसमें पानी रहा हो सकता था। कावेरी नदी से एक नाली द्वारा इसकी पानी की आपूर्ति की जाती थी। एक शहर के लिए उपयुक्त सुविधाओं के लिए की गई व्यवस्था कावेरीपट्टिनम को एक शहरी केन्द्र के रूप में महत्व की और सकेंत करती है।

5.5 व्यापार

विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में कुछ उत्पाद थे जो उनके लिए विशिष्ट थे, कुछ अन्य क्षेत्रों में उनकी कुछ कमी थी। इसलिए ऐतिहासिक काल में बहुत पहले समय से क्षेत्रों के

बीच विनिमय मौजूद थे। उदाहरण के लिए, कृषि क्षेत्रों ने खाद्यान्न और गन्ने का उत्पादन किया लेकिन वह नमक और मछली के लिए तटीय क्षेत्रों पर निर्भर थे। तटीय क्षेत्रों में काफी नमक और मछली का उत्पादन होता था लेकिन मुख्य आहार, चावल, धान की खेती के क्षेत्रों से लाया जाता था। पहाड़ी श्रृंखलाएं लकड़ी, मसालों आदि से समृद्ध थी लेकिन उन्हें खाद्यान्न और नमक के लिए कृषि क्षेत्रों और तटीय क्षेत्रों पर निर्भर रहना पड़ता था। इस प्रकार, स्थानीय और अक्सर लंबी दूरी के स्थल और समुद्र पार के व्यापार संजाल विकसित हुए।

स्थानीय व्यापार के संदर्भ में वस्तु विनिमय लेन–देन का सबसे आम तरीका था। वस्तु विनिमय की अधिकांश वस्तुएँ तत्काल उपयोग के लिए थी। नमक, धान, मछली, दुग्ध उत्पाद, जड़े, हिरन का माँस, शहद और ताड़ी सुदूर दक्षिण में वस्तु विनिमय की नियमित वस्तुएँ थी। बहुत कम ही विलास की वस्तुएँ जैसे कि मोती, हाथी दाँत भी वस्तु, विनिमय के रूप में दिखाई देते हैं। विमिनय दर स्थाई नहीं थी। छोटा–मोटा मोल भाव ही वस्तुओं की कीमत तय करने का एक मात्र तरीका था। धान और नमक केवल दो वस्तुएँ थीं जिनके लिए सुदूर दक्षिण की वस्तु विनिमय प्रणाली में एक निर्धारित विनिमय दर ज्ञात थी। विनिमय लाभ उन्मुख नहीं था।

उपमहाद्वीप के अन्दर स्थल व्यापार मार्गों के व्यापक संजाल ने व्यापारियों के आवागमन को सुविधाजनक बनाया। पूरे भारत में चार प्रमुख मार्ग और उनके सहायक छोर्ट मार्ग अस्तित्व में थे। एक मार्ग सातवाहन की राजधानी प्रतिष्ठान या पैठन से शुरू होकर

तगार, नासिक, सेतव्या, बाणसभ्य, उज्जैनी और साँची से होता हुआ गंगा घाटी तक जाता था। अन्त में यह उत्तर में कौशल की राजधानी श्रावस्ती तक पहुँचता था। एक अन्य मार्ग अंग राज्य (भागलपुर क्षेत्र) की राजधानी चम्पा से पश्चिम और उत्तर पश्चिम में गंधार राज्य में पुष्कलावती की तरफ जाता था। इस मार्ग का उल्लेख *रामायण* में राम के बनवास के संदर्भ में मिलता है। एक तीसरा मार्ग पूर्व में पाटलीपुत्र से शुरू होकर सिन्धु डेल्टा में पटल तक जाता था। *पेरिप्लस* काबुल के साथ भृगुकच्छ को जोड़ने वाले एक स्थल मार्ग का उल्लेख करता है जो पश्चिमी तट का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यह मार्ग काबुल से पुष्कलावती, तक्षशिला, पंजाब और गंगा की घाटी से होते हुए मालवा क्षेत्र को पार करके भृगुकच्छ तक जाता था। बौद्ध स्त्रोत गंगा घाटी से गोदावरी घाटी तक जाने वाले एक मार्ग का उल्लेख करते हैं। इसे *दक्षिणापथ* के नाम से जाना जाता था। *अर्थशास्त्र* के लेखक कौटिल्य उन वस्तुओं का उल्लेख करते हैं जिनमें दक्षिणी क्षेत्र व्यापार करते थे और इसमें शंख, हीरे, मोती, बहुमूल्य पत्थर और सोना शामिल था। अच्छे किस्म के वस्त्रों का भी उत्तर और दक्षिण के बीच लेन–देन होता था। उत्तरी काले पॉलिशदार मृद भांड, एक विशिष्ट प्रकार के शहरी बर्तन भी उत्तर भारत से सुदूर दक्षिण तक पहुँचे। इन मिट्टी के बर्तनों के अवशेष पांडेय के क्षेत्र में मिले हैं। जड़ी–बूटियाँ और मसालों जैसी वस्तुएँ जिसमें जटामांसी और मूलाबाथ्रम (मरहम को तैयार करने के उपयोग में आने वाली जड़ी–बूटी) शामिल थे, को जहाजों द्वारा पश्चिम में भेजा जाता था। दक्षिण भारत के विभिन्न भागों से बड़ी संख्या में आहत

सिक्के बरामद किये गए हैं जो उत्तर और दक्षिण के बीच तेज व्यापार की गवाही देते हैं।

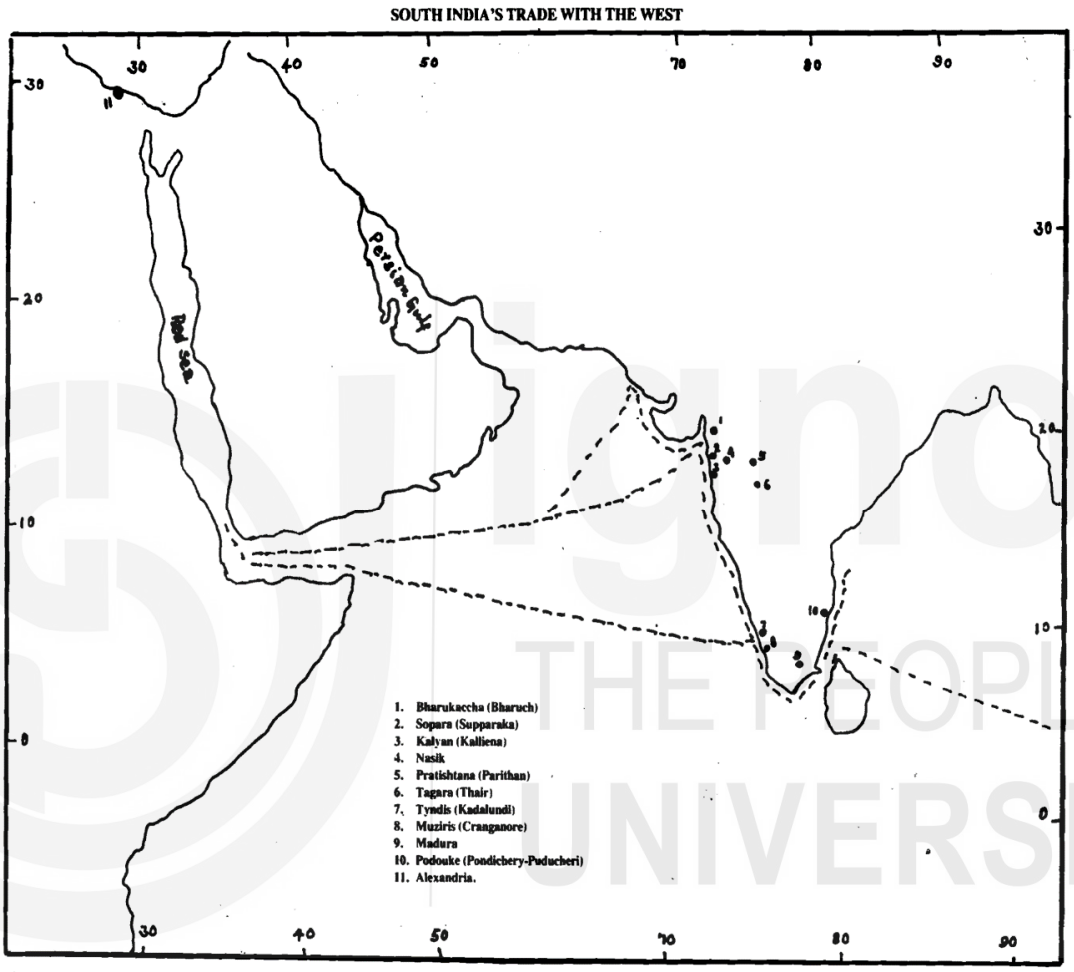

मानचित्रः पश्चिम के साथ दक्षिण भारत का व्यापार। स्त्रोतः ईएचआई–02 खण्ड 7

लम्बी दूरी के सफल व्यापार का लाभ ज्यादातर विलासिता वाली वस्तुओं में था और इसका आनन्द शासक व कुलीन वर्ग द्वारा किया जाता था। एशिया और यूरोप के बीच नियमित व्यापार संबंध दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. में स्थापित किये गये थे। इस व्यापार में प्रमुख भागीदार, पश्चिम में रोमन साम्राज्य और पूर्व में चीन के हान साम्राज्य थे। रोमन साम्राज्य के विस्तार और शासकों की एक शाक्तिशाली श्रृंखला के उद्भव के कारण रोमन साम्राज्य के साथ–साथ पश्चिम एशियाइ देशों में विलासिता की वस्तुओं की माँग बढ़ी। पश्चिम में रेशम की अत्यधिक माँग थी और इसका उत्पादन केवल चीन में होता था। यह रेशम मध्य एशिया के तकलामकान रेगिस्तान, पामिर पठार और ईरान के माध्यम से एक लम्बी यात्रा करके पश्चिम एशिया तक पहुंचता था। वहां से यह रोम के कुलीन वर्गों के हाथों में पहुँच जाता था। हालांकि इस सड़क के माध्यम से अन्य वस्तुओं को भी ले जाया जाता था लेकिन रेशम सबसे कीमती व बहुत माँग में था इसलिए इस सड़क को इतिहास में सिल्क रोड़ के नाम से जाना जाता था।

मानचित्रः इण्डो–रोमन ट्रेड. श्रेयः यूजरः PHGCOM

स्त्रोतः विकिमिडिया कॉमन.(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Indo-Roman_trade.jpg)

सिल्क रोड़, हालाँकि एक लम्बा रास्ता था और व्यापारियों को विभिन्न खतरों से गुजरना पड़ता था। इसलिए स्वाभाविक रूप से इस मार्ग़ के माध्यम से व्यापारियों द्वारा लाई गई वस्तुओं की उच्च कीमत होती थी। यहाँ ईरान के शासकों ने मध्यस्थों के रूप में काम किया और इस व्यापार पर भारी टोल और सीमा–शुल्क लगायें। रोमनों के बीच उनके प्रति काफी बैर–भाव था क्योंकि उनके हस्तक्षेप के कारण रेशम और अन्य

उत्पाद बहुत अधिक दाम पर मिलते थे। सामान्य युग की प्रारंम्भिक शताब्दियों में कुषाणों के उदय के साथ, यह भूमिका उनके द्वारा ग्रहण कर ली गई थी। परिणामस्वरूप व्यापार और नगरीकरण सभी के लिए बहुत लाभदायक साबित हुआ।

रोमन और प्रायद्वीप भारत के बीच सीधा व्यापार अरबों की मध्यस्थता के माध्यम से किया जाता था। अरबों ने भारत के साथ वाणिज्यिक संबंध स्थापित किये थे और सामान्य युग के शुरू होने से पहले समुद्री व्यापार को राजमार्ग बना लिया था। उन्होंने पूर्व–पश्चिम व्यापार में एक वांछनीय स्थिति प्राप्त कर ली थी। उन्हें अरब सागर में पवन प्रणालियों का कुछ ज्ञान था और उन्होंने इसे एक व्यापार रहस्य बनाए रखा। लेकिन मानसूनी हवाओं की खोज के साथ जिसका श्रेय हिप्पेलस नामक नाविक को जाता है, भारत के साथ रोम का सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया था। *पेरिप्लस* ने दिखाया कि यह हवा एपीफि (जुलाई) महीने में बहती थी जब व्यापारी लाल सागर से अपनी यात्रा शुरू करते थे। लाल सागर और अरब सागर के संगम पर ईडन से हवा की दिशा का अनुसरण करके भारतीय तट तक तेज और आसान तरीके से पहुँचा जा सकता था।

रोमन व्यापारी, तांबा, टिन, सीसा, पुखराज, चकमक पत्थर, काँच (मनके बनाने के लिए) जैसा कच्चा माल और तैयार उत्पाद जैसे कि उत्तम गुणवत्ता की शराब, उत्तम बुनावट के कपड़े, उत्कृष्ट गहने, सोने और चाँदी के सिक्के और विभिन्न प्रकार के उत्तम मिट्टी के बर्तन, लाते थे। वे अपने साथ मसाले और औषधीय जड़ी बूटियां जैसे काली

मिर्च, जटामांसी, मूलाबाथ्रम, सिनबार, कीमती और अर्द्धकीमती पत्थर जैसे फिरोजा, सुलेमानी पत्थर, इन्द्रगोप, सूर्यकान्त, गोमेद, सीपियाँ, मोती और हाथी दाँत, इमारती लकड़ी की वस्तुएँ जैसे आबनूस, चन्दन, सागोन, बाँस, और वस्त्र जैसे रंगीन कपड़े और मलमल के साथ–साथ नील और लाख जैसे रंजक पदार्थ ले जाते थे। रोमन भारतीय वस्तुओं का सोने में भुगतान करते थे। दक्षिण भारत का श्रीलंका और दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ भी व्यापारिक सम्बन्ध थे। मसाले, कपूर और चंदन मुख्य वस्तुएँ थी जिनका व्यापार होता था।

बोध प्रश्न–1

1 इस अवधि में भारत के स्थल व्यापार मार्गों पर एक नोट लिखिए।

_____

_____

_____

_____

_____

2 निम्नलिखित कथनों को पढ़े और (✓) और गलत (×) चिन्हित करें।

क 200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. के बीच की अवधि लंबी दूरी के व्यापार के पतन के लिए उल्लेखनीय है। ( )

ख सिल्क रोड़ का नाम 19वीं शताब्दी में गढ़ा गया था। ( )

ग हिप्पेलस दक्षिण–पश्चिम मानसून का नाम है। ( )

घ मुजिरिस कोकंण तट का एक बन्दरगाह था। ( )

ड़ भारत रोम से काली मिर्च खरीदता था। ( )

च अरबों ने भारत रोमन व्यापार में मध्यस्थों के रूप में काम किया। ( )

छ वस्तु विनिमय 200 बी.सी.ई. और 300 सी.ई. के बीच की अवधि में पूरी तरह समाप्त हो गया था। ( )

5.6 वाणिज्यिक संगठन

छोटे पैमाने पर स्थानीय लेन–देन में, उत्पादक विक्रेता भी थे। *परातव* समुदाय मछली पकड़ने और नमक बनाने का काम करता था। उनका उल्लेख प्राचीन *तमिलाकम्* के नेयदल (तटीय क्षेत्र) में किया गया है। नमक व्यापारियों को उमान के नाम से जाना जाता था। नमक को बड़े बोरों में बैलगाड़ियों या गधा गाड़ियों से ले जाया जाता था। नमक व्यापारियों के अलावा मक्का के व्यापारी (*कुलावानिकान*), कपड़े के व्यापारी (*अरूवाइवानिकन*) सोने के व्यापारी (*पोनवानिकन*), चीनी के व्यापारी (*पनितावानिकन*) भी व्यापार का हिस्सा थे। वे काफी सम्पन्न थे क्योंकि वे तमिलाकम् के कुछ गुफाशिलालेखों में कुछ तपस्वियों के निवास स्थानों के दाता के रूप में थे। तिरूवेल्लारई के संगठन का एक संदर्भ है; इसके सदस्यों को निकमाटटोर कहा जाता

था जिसका अर्थ है निगम या एक श्रेणी का सदस्य। दक्कन में हमें व्यापारियों के अलावा घुमक्कड़ भाटों, नतृकियों, सदेंशवाहकों और भिक्षुओं को भी पाते हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे और व्यापार मार्गों का इस्तेमाल करते थे। अधिकांश बौद्ध गुफा स्थल दक्कन में इन व्यापार मार्गों के पास स्थित थे और वे यात्रा करने वाले व्यापारियों को भोजन और आश्रय या यहाँ तक की ऋण भी प्रदान करते थे। दक्कन के व्यापारियों ने ही नहीं बल्कि तमिलाकम् के व्यापारियों ने भी समुद्र से होने वाले व्यापार में भाग लिया। मिस्त्र और अलेक्ज़ेड्रिया में कुछ भारतीय व्यापारियों की उपस्थिति इस अवधि के विदेशी लेखन से प्रमाणित होती है। दक्षिण भारत में तमिलाकम् के मुखियों ने समुद्रजनित व्यापार को प्रोत्साहित किया। तटों पर प्रकाश घर बनाए गए। ऐसी जेट्टी थी जहाँ रोमन जहाज मुखियों के चिन्ह की मोहर लगवाने के लिए अपना माल उतारते थे। भंडारन की सुविधा प्रदान की गई, गोदामों को सुरक्षा दी गई। सुदूर दक्षिण में और साथ ही साथ दक्कन में समुद्र जनित व्यापार उस व्यापार के कुछ लक्षण प्रदर्शित करता है जिन्हें कुछ आधुनिक विद्वान प्रशासित व्यापार के रूप में वर्णित करते हैं।

इस अवधि के दान रिकॉर्डों में व्यापारियों के पर्याप्त संदर्भ हैं। वे विभिन्न पदनामों के तहत दिखाई देते हैं जिनमें सबसे आम है *वनिक, श्रेष्ठिन,* और *सार्थवाह /जातक* कथाएँ अक्सर उनका उल्लेख करती हैं, उनमें से *वनिक* संभवतः एक छोटा व्यापारी था जबकि *सार्थवाह* सार्थ या कारवा का प्रमुख था। वे बैलगाड़ियों में दूर–दूर तक अपने माल के साथ यात्रा करते थे। *जातक* कथाओं में एक *सार्थवाह* का जिक्र है जो पुब्बन्त (पूर्वी

सीमान्त) से लेकर अपराहन्त (पश्चिमी सीमा) तक 500 से 1000 गाड़ियों के साथ यात्रा करता था।

व्यापारियों के बीच *सेठी* या श्रेष्ठिन सबसे प्रमुख था। *जातक* कथाओं में वे बहुत धनी व्यक्ति के रूप में दिखाई देते हैं। *जातक* कथाओं में *श्रेष्ठिन* का उल्लेख एक निजी उद्यमी के रूप में होता है जो बहुत समृद्ध था। लेकिन जो बात अधिक महत्वपूर्ण है वह यह है कि वह व्यापारियों का नेता भी था। शायद उसकी संपत्ति ने उसे व्यापारियों के बीच अग्रणी स्थान दिया। *जातक* कथाओं में राजाओं और *श्रेष्ठिन* के बीच घनिष्ट संबंध का संकेत मिलता है। यद्यपि वह शाही दरबार का लगातार आगन्तुक था लेकिन वह कभी भी एक राजभोग्य (राजा का कर्मचारी) नहीं था। राजा और श्रेष्ठिन के बीच का यह संबंध काफी हद तक उनके साझा आर्थिक हितों पर आधारित था। शाही दरबार में *श्रेष्ठिन* व्यापारियों का प्रतिनिधित्व करता था। वह राजा को व्यापारियों के हाल–चाल और उनके व्यापारिक हितों के बारे में बताता था। *अवदान* साहित्य दिखाता है कि मगध के खिलाफ लड़ने के लिए एक *श्रेष्ठिन* ने कौशल के राजा को बड़ी रकम ऋण के रूप में दी थी। इस प्रकार राजा अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के लिए उन पर निर्भर था। व्यापारियों और शासकों के बीच यह घनिष्ट सम्बन्ध इस अवधि की एक खास विशेषता थी। राज श्रेष्ठिन राजा की ओर से व्यापार करते थे। पार्थियन शासक गोंडोफरेस (1946 सी.ई.) का हब्बन नामक एक राज श्रेष्ठिन था। सेंट थॉमस (तीसरी शताब्दी) के जीवन के सीरियाई संस्करण में यह बताया गया है कि इस हब्बन को शाही महल के निर्माण के लिए एक कुशल वास्तुकार प्राप्त करने के लिए गोंडोफरेस

द्वारा नियुक्त किया गया था। इस प्रकार हब्बन सेंट थॉमस को पश्चिम एशिया से एक दास के रूप में भारत लेकर आया। इस वर्णन की ऐतिहासिकता पर सवाल उठाया जा सकता है लेकिन यह राजा की अपनी आवश्यकताओं के लिए *राजश्रेष्ठिन* पर निर्भरता को दर्शाता है।

5.7 बंदरगाह

टोलेमी और *पेरिप्लस* दोनों ही सामान्य युग की पहली दो शताब्दियों में भारत के पश्चिमी और पूर्वी समुद्र मंडल के फलते–फूलते बंदरगाहों का उल्लेख करते हैं। सिन्धु नदी के मुहाने पर सबसे प्रसिद्ध बर्बरिकम था। यह सिन्धु की एकमात्र नौगम्य मध्यधारा पर स्थित था। इसने भारत–रोमन व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चीनी ग्रन्थ *होउहांशु* के आधार पर यह ज्ञात है कि व्यापारियों ने *शेन तु* (निम्न सिंध) और रोम के बीच समुद्री व्यापार से एक अच्छा खासा लाभ कमाया। यह क्षेत्र दूसरी शताब्दी सी.ई. के मध्य तक कुषाणों के नियन्त्रण में था।

अगला महत्वपूर्ण बंदरगाह गुजरात तट पर साइरा–स्ट्रीन (वर्तमान का सूरत) था। पश्चिमी तट के बंदरगाहों में सबसे महत्वपूर्ण बेरीगाजा था। टोलेमी और *पेरिप्लस* दोनों इसका उल्लेख करते है। भारतीय स्रोतों में इसका उल्लेख भृगुकच्छ (प्राकृत में भृगुच्छ) के रूप में मिलता है। यह नर्मदा नदी के मुहाने पर स्थित था। हालाँकि उथले पानी के कारण जहाजको इस बंदरगाह तक पहुँचाना मुश्किल था इसलिए नंबनुस (नाहपण, शक क्षतरप) ने अन्य देशों से आने वाले जहाजों को बंदरगाह तक पहुँचने में मदद

करने के लिए नाविक नियुक्त किये। उन्होंने बंदरगाह में प्रवेश करने वाले या उससे बाहर जाने वाले विदेशी जहाजों का मार्ग दर्शन करने के लिए *ट्रेपगा* और *कोटिम्बा* नामक छोटी नावों का उपयोग किया। शायद सातवाहन राजाओं ने भी इस मामले में शको का अनुसरण किया। कन्हेरी के एक शिलालेख में सागरपालो का उल्लेख किया गया है जो विदेशी जहाजों को बंदरगाह तक पहुँचाने के लिए मदद करने के लिए उसी प्रकार नियुक्त किये जाते रहे होंगे। बेरीगाजा अपने अर्न्तक्षेत्र से अच्छी तरह से जुड़ा हुआ था। *पेरीप्लस* के अनुसार, तगार और प्रतिष्ठान (मध्य दक्कन में) से बेरीगाजा तक बैलगाड़ी द्वारा क्रमशः तीस और बीस दिन लगते थे। पूर्व में बेरीगाजा उज्जैनी से जुड़ा हुआ था। *पेरिप्लस* ने आगे कहा है कि चीन से व्यापार की वस्तुएँ बेक्ट्रीया से काबुल, पुष्कलावती और निम्न सिन्धु तक पहुँचाए जाते थे और स्थल मार्ग से बेरीगाजा पहुँचते थे। उस समय भारत का कोई भी अन्य बन्दरगाह इस तरह के विस्तृत अन्तःक्षेत्र से जुड़ा हुआ नहीं था।

कोकंण तट में *पेरिप्लस* में तीन बंदरगाहों का उल्लेख हैः सुपारा (मुम्बई के पास सोपारा), कल्लीने (कल्यान) और सेमिला (चॉल मुम्बई से दक्षिण में 23 मील। वे सभी सातवाहन के अधीन थे। *पेरिप्लस* हमें बताता है कि ज्येष्ट सारागनुश (सातकरणी प्रथम) के शासन काल में कल्लीने एक व्यस्त बंदरगाह था। लेकिन इसकी समृद्धि सेन्डनेस (सुन्दर सातकरणी) और नाहपण के बीच लड़ाई से बहुत अधिक प्रभावित हुई, जिसने बंदरगाह की घेराबन्दी की थी। यूनानी जहाजों को बंदरगाहों में प्रवेश करने से रोक दिया गया था। यह भारत रोमन व्यापार को नियंत्रित करने के लिए शक और

सातवाहन दोनों के हितों को इंगित करता है। इस घेराबन्दी के कारण शायद कल्यान के बंदरगाह ने अपना महत्व खो दिया और इसका उल्लेख 150 सी.ई. में टोलेमी के *ज्योगरफी* में नहीं मिलता।

मन्डगोर (बानकोट), पालेपटमे (दावोल), मेलिजिगरा (जयगढ़), बाइजेनटियम (वीजाद्रोग), तोगुरुम (देवगढ़), तुरान्नबोआस (मालवन) के बंदरगाह कोंकण तट के दक्षिण में स्थित थे लेकिन उनमें से कोई भी कल्याण की तरह महत्वपूर्ण नहीं था। उत्तरी कोंकण के बंदरगाह अधिक महत्वपूर्ण थे क्योंकि उत्तरी कोंकण कृषि की दृष्टि से अधिक समृद्ध था और उसके बंदरगाह अपने अन्तःक्षेत्र से भली–भाँति जुड़े हुए थे। प्लीनी और टोलेमी दोनों दक्षिण कोकंण में समुद्री दस्युओं की गतिविधियों का उल्लेख करते हैं।

मालाबार तट पर मुजिरिस के बन्दरगाह का उल्लेख *पेरिप्लस*, टोलेमी और *संगम* साहित्य में मिलता है। यह केरल में क्रेंगानोर के पास स्थित था। यह *संगम* साहित्य के मुचिरिपट्टनम से मेल खाता है जिसमें कहा गया है कि यवन जहाज सोने के सिक्कों के साथ मुजिरिस आते थे और अपनी वापसी यात्रा के लिए काली मिर्च भरकर ले जाते थे। तीसरी शताब्दी के रोमन ग्रन्थ में रोमन सम्राट ओगस्टस की याद में एक पुण्य स्थल का उल्लेख किया गया है। यह इंगित करता है कि मुजिरिस में रोमन नागरिक रहते थे। यह चेर राजाओं के नियन्त्रण में था। भोजपत्र पर लिखे एक मध्य दूसरी शताब्दी सी.ई. के ऋण अनुबन्ध दस्तावेज में लिखा गया है कि कैसे मुजिरिस में लंगर डालने वाला जहाज गैंजेटिक गुलमेहंदी (एक सुगंधित तेल), उत्कृष्ट वस्त्र और हाथी

दाँत के उत्पादों आदि से भरा गया था। मुजिरिस से यह लाल सागर में एक बंदरगाह के लिए रवाना होना था जहाँ यह सामान उतारे जाने थे। अन्त में यह मिस्र में अलेकजेन्डरिया के बन्दरगाह तक पहुँचना था। इस प्रकार, एक तरफ गंगा के डेल्टा के साथ और दूसरी और अलेकजेन्डरिया के साथ दूर–दराज के वाणिजिक सम्पर्कों पर यह अद्‌भुत दस्तावेज रोशनी डालता है।

कोरोमंडल तट के बन्दरगाह पांडयों और चोलों के अधीन थे। वे केमरा, पोडुक और सोपात्मा हैं। पोडुक अरिकेमेडु से मेल खाता है जहाँ खुदाई से एक रोमन व्यापार चौकी का पता चला है। यहाँ से एम्फोराय, अरेंटाइन वेयर, रोमन लैम्प, ग्लास और पत्थर के मनके मिले हैं। एक और प्रसिद्ध बन्दरगाह कावेरीपट्टिनम था जिसे हम *संगम* साहित्य से जानते है। टालेमी ने इसका उल्लेख खाबरोस के नाम से किया है। यह आधुनिक पुहार या पम्पुहार है।

आन्ध्र तट में दो महत्वपूर्ण बंदरगाह कोटांकोसिला (घंटसाल) और मसुलीपट्टन क्षेत्र में अल्लोसाईन। इस तट के दूसरे बंदरगाह से जहाज प्रारंभिक भारतीय साहित्य में जाने माने क्रिस चोरा या स्वर्ण भूमि की ओर जाते थे। यह म्यांमार में दक्षिणी तट, थाइलैंड और दक्षिण–पूर्व एशिया के द्वीपों को संदर्भित करता है। नागार्जुनीकोंडा के इक्ष्वाकु शिलालेख में कृष्णा गोदावरी डेल्टा के बीच और श्रीलंका और वंग के बीच नियमित सम्पर्क का उल्लेख किया गया है। श्रीलंका के भिक्षु कृष्णा–गोदावरी क्षेत्र के बौद्ध संघों में आते थे। यह सांस्कृतिक सम्पर्क व्यापार सम्बन्धों पर आधारित हो सकता है।

पेरिप्लस गंगा के डेल्टा में गंगे के बन्दरगाह का उल्लेख करता है। इस बंदरगाह की पहचान आमतौर पर चन्द्रकेतुगढ़ के पुरातात्विक स्थल से की जाती है। इसका मलमल प्रसिद्ध था। इसे गंगा की घाटी के माध्यम से या तट द्वारा द्रविड़ क्षेत्र में भृगुकच्छ बन्दरगाह को निर्यात किया जाता था। वहां से उसे रोमन बाजारों को भेज दिया जाता था। टोलेमी द्वारा वर्णित तामिलिटेस का बन्दरगाह संभवतः मेदिनीपुर के आधुनिक तामलुक क्षेत्र में ताम्रलिप्त बंदरगाह ही है।

टोलेमी ने कुछ चुनिंदा बंदरगाहों के बारे में एम्पोरियन (एक व्यापारिक चौकी) पदनाम का इस्तेमाल किया था। बी. एन. मुखर्जी का मानना है कि यदि पूर्व में एक बन्दरगाह में रोमन बस्ती थी तो वह टोलेमी का एम्पोरियन कहलाई जाती थी। दक्कन की तुलना में मालाबार और कोरोमंडल तट में एम्पोरियन अधिक थे। गौरतलब है कि टोलेमी ने गंगे और तामिलिटेस के बन्दरगाहों के लिए इस शब्द का इस्तेमाल नहीं किया था। यह इंगित करता है कि बंगाल के बन्दरगाह भारत और रोमन साम्राज्य के बीच व्यापार में सक्रिय भूमिका नहीं निभाते थे।

5.8 आयात और निर्यात की वस्तुएँ

प्लीनी, टोलेमी और *पेरिप्लस* के लेखक इंडों–रोमन व्यापार में आयात–निर्यात की कुछ वस्तुओं के बारे में संकेत देते हैं। कृषि उत्पादों में चावल और गेहूँ कोकंण तट, मालाबार तट और भृगुकच्छ से पूर्वी अफ्रीका के तट पर निर्यात किये जाते थे। रोमन बाजारों में काली मिर्च बहुत मूल्यवान वस्तु थी। मलाबाथ्रम को मालाबार तट से निर्यात

किया जाता था। चंदन निर्यात की एक और वस्तु थी। शिल्प उत्पादों में सूती कपड़े और मलमल बहुत मूल्यवान थे। दूसरी और चीनी रेशम भी भारतीय बंदरगाहों के माध्यम से रोमन बाजारों में पहुँचता था। इस प्रकार भारत अर्न्तराष्ट्रीय रेशम बाजार में शामिल हो गया था। बहुमूल्य पत्थरों के अलावा रोमन अगेट (सुलेमानी पत्थर) और कारनेलियन (इन्द्रगोप) जैसे अर्धकीमती पत्थरों में भी रूचि रखते थे। विलासिता की वस्तुएँ निर्यात की वस्तुओं में एक महत्वपूर्ण हिस्सा थीं और उनकी रोमन बाजारों में ऊँची कीमतें थीं। इस प्रकार इस व्यापार में सम्मिलित व्यापारी अच्छा मुनाफा कमाते थे। प्लीनी के उल्लेख के अनुसार मालाबार की काली मिर्च को भारी कीमत मिलती थी इसलिए यह रोमिला थापर द्वारा इसे 'ब्लेकगोल्ड' का नाम देने का औचित्य सिद्ध करता है।

रोम और पश्चिम एशिया से आयात की वस्तुएँ हालाँकि इतनी विविध नहीं थी। फारस से खजूर, बेरीगाजा आते थे। *पेरीप्लस,* इतालवी और अरबी मदिरा का उल्लेख भी करते हैं। उत्खनन स्थलों में पाये जाने वाले एम्फोराई और मदिरा ग्लास मदिरा के आयात की गवाही देते हैं। आयात की अन्य वस्तुओं में बेबीलोन और अलेक्जेन्डेरिया से सुई से बुने वस्त्र, काँच के बर्तन और कॉपर, ताँबा, टिन और सीसा थे। रोमन सोने के सिक्कों को बुलियन के रूप में पश्चिम तट के बन्दरगाहों में आयात किया जाता था।

उपरोक्त सूची से यह स्पष्ट है कि भारत ने भारत–रोमन व्यापार से भारी मुनाफा कमाया। 22 सी.ई. में, टाईबेरियस रोमन सम्राट ने शिकायत की कि रोम को विलासिता

की वस्तुओं की भारी माँग को पूरा करने के लिए अपने धन की निकासी करनी पड़ रही थी। प्लीनी आगे बताते हैं कि हर साल रोमन बाजारों में भारतीय वस्तुएँ सौ प्रतिशत अधिक कीमत पर बेची जा रही थीं। और इस तरह रोमन साम्राज्य प्रत्येक वर्ष में 550,000,000 सेस्टर्सेस (एक रोमन सिक्का) गँवा रहा था।

5.9 सिक्के

दक्षिण भारत में कई विभिन्न प्रकार के स्थानीय सिक्के उपयोग में थे। प्राचीन तमिल साहित्य *कासू, कनम, पोन* और *वेनपोन* की बात करता है। ये सिक्कों के प्रकार खोजे नहीं गये हैं। दक्कन के शिलालेखों में कहापण का उल्लेख है जो स्थानीय चाँदी के सिक्के थे और सुवर्ण जो रोमन या कुषाणों के सोने के सिक्के थे। इसके अलावा सीसे, पोटिन, ताँबें और टिन और अन्य धातुओं के मिश्रित सिक्के और ताँबा, चाँदी और पंचचिन्हित सिक्के (आहत सिक्के) प्रचलित थे।

प्रायद्वीप भारत के कई हिस्सों में बड़ी संख्या में रोमन सिक्कों के भंडार पाये गये हैं। उन्हें पहली शताब्दी बी.सी.ई. से तीसरी शताब्दी सी.ई. के बीच दिनांकित किया जा सकता है। ये सिक्के ज्यादातर सोने और चाँदी के थे। ताँबे के सिक्के भी उपयोग में थे लेकिन वे दुर्लभ थे। कुछ विद्वानों का मानना है कि रोमन सिक्कों का इस्तेमाल बुलियन के रूप में किया जाता था। दक्षिण भारत में विशेष रूप से कोरोमंडल तट पर रोमन सिक्कों की नकलें भी मौजूद थी जहाँ कुछ व्यापारिक चौकिया थी।

इस अवधि में जारी किये गये सिक्कों की बड़ी संख्या और विविधता व्यापार और संपन्नता की फलती–फूलती स्थितियों की गवाही देती हैं। कुषाण रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार में रूचि रखते थे। उनके सिक्के रोमन सिक्कों के अनुरूप ढ़ाले गये थे। विमा कडफीसेस का एक विशेष प्रकार का सोने का सिक्का समकालीन रोमन सिक्कों के वजन के बराबर था।

चाँदी के सिक्कों के मामलें में, निम्न सिंधु के क्षेत्र के सिक्के संभवतः शाही टकसाल द्वारा जारी किये गये थे लेकिन हुविष्क (106 सी.ई.) के मथुरा शिलालेख में उल्लेखित *पुराण* नामक चाँदी का सिक्का संभवतः निजी धन रखने वालो द्वारा जारी किया गया था। बी. एन. मुखर्जी का सुझाव है कि कुषाणों ने निम्न सिंधु क्षेत्र की मुद्रा प्रणाली को नियंत्रित करने में सक्रिय रूचि ली क्योंकि यह क्षेत्र भारत–रोमन व्यापार के लिए वाणिज्यिक रूप से महत्वपूर्ण था। दूसरी ओर दैनिक लेन–देन के लिए तांबे के सिक्कों की आवश्यकता थी। कुषाण के तांबे के सिक्कों ने यूनानियों क ड्रेक्म मानक का अनुसरण किया। कुषाण सिक्के ना केवल भारत में, बल्कि बाहर भी पाये जाते है, जैसे उदाहरण के लिए इथियोपिया में। यह अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में कुषाणों की भागीदारी का संकेत देता है।

इस प्रकार, यह अवधि भारतीय व्यापार के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसने पहली बार एक अर्न्तराष्ट्रीय चरित्र प्राप्त किया। अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में सामुद्रिक व्यापार लाल सागर और भूमध्य सागर के व्यापार से जुड़ गया था।

बोध प्रश्न–2

1 इस अवधि के वाणिजिक संगठन का वर्णन दस पंक्तियों में कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

2 निर्यात और आयात की मुख्य वस्तुएँ क्या थी?

_____

_____

_____

_____

_____

3 इस अवधि के किन्हीं तीन बन्दरगाहों के बारे में विस्तार से लिखें।

_____

_____

_____

_____

_____

4 निम्नलिखित कथनों को पढ़े और सही (✓) या गलत (×) चिन्ह लगाए।

क शिशुपालगढ़ आन्ध्र में एक शहरी केन्द्र था। ( )

ख ढ़ाले गये तांबे के सिक्के इस अवधि के शहरी केन्द्रों में पाये जाते है। ()

ग सतनीकोटा एक कुषाण शहरी केन्द्र था। ()

घ प्राचीन दक्षिण भारत में रोमन सिक्कों का उपयोग आभुषणों के रूप में किया जाता था। ( )

ड. इस अवधि में कोई स्थानीय सिक्के उपयोग में नहीं थे। ( )

च पंच चिन्हित सिक्के (आहत सिक्के) उत्तर और दक्षिण दोनों में पाये गये है। ( )

छ मठों और व्यापारियों के बीच मित्रता के संबंध नहीं थे। ( )

ज इस अवधि के राजाओं ने प्रमुख व्यापारियों को पैसे के लिए तंग किया। ( )

5.10 सारांश

व्यापार और वाणिज्यि का विस्तार 200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. की बीच की अवधि में हुआ। यह व्यापार अलग–अलग तरीकों से किया गया था। छोटे स्तर का विनिमय पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ था। शासकों ने स्थानीय, क्षेत्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में सक्रिय रूप से भाग लिया। व्यापार की सुविधा के लिए परिवहन, भंडारन और जहाज जैसी सुविधाएँ मौजूद थी। विभिन्न प्रकार के सिक्के उपयोग में थे। भारत के लिए इन्डो–रोमन व्यापार इतना लाभदायक था कि बड़ी मात्रा में रोमन सोने के सिक्के भारत में आए। एक बड़ी संख्या में व्यापार के केन्द्र कस्बे, बन्दरगाह और शहर उभरे और लगभग वह सभी स्थल मार्गों से और यहाँ तक कि नदी मार्गों से जुड़े हुए थे।जीवन्त व्यापारिक गतिविधि इस अवधि को भारतीय इतिहास में सबसे समृद्ध अवधियों में से एक बनाती है।

5.11 शब्दावली

पंच चिन्हित सिक्के : इन सिक्कों के निर्माण में धातु को सपाट चादरों में पीटा जाता था फिर लम्बाई में काटा जाता था। कोरी चादरों को वाछिंत भार में काट दिया जाता था। कोरे टुकड़े चौकोर या आयताकार थे। वास्तविक वजन प्राप्त करने के लिए किनारों को काटा जाता था। इसलिए अधिकांश सिक्के आकार में अनियमित हैं। उन पर दबाकर प्रतीकों

से मोहर लगाई जाती थी। प्रत्येक पंच में एक अलग प्रतीक होता है।

प्रशासित व्यापार : यह उस व्यापार को सन्दर्भित करता है जिसमें व्यापार के केन्द्र लंगर डालने, भंडारन और नागरिक व कानूनी संरक्षण,बन्दरगाह और भुगतान के तरीके पर समझौते जैसी व्यापार सुविधाओं की पेशकश करते थे।

निगम : व्यापारियों या कारीगरों की एक श्रेणी।

पोतिन : तांबें और टिन की एक मिश्र धातु।

मुद्रा शास्त्र : विद्वान जो सिक्कों के अध्ययन के विशेषज्ञ हैं।

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1 भाग 5.5 देखें।

2 क × ख ✓ ग ✓ घ ✓ ड़ ×

च ✓ छ ×

बोध प्रश्न–2

1 भाग 5.6 देखें।

2 भाग 5.8 देखें।

3 भाग 5.7 देखें।

4 क × ख ✓ ग × घ × ड. ×

च ✓ छ × ज ×

5.13 संदर्भ ग्रन्थ

बेगली, वी और आर.डी. द प्यूमा (ऐड) (1991). *रोम ऐंड इंडियाः द एशियंट सी रूट.* मैडिसन.

चक्रवर्ती, आर. (ऐड) (2001). *ट्रेड इन अर्ली इंडिया.* नई दिल्ली.

चंद्रा, एम. (1977). *ट्रेड एंड ट्रेड रूट्स इन एंशियंट इंडिया.* नई दिल्ली.

चट्टोपाध्याय, बी.डी. (ऐड) (1987). *ऐसेज़ इन ऐशिंट इंडियन इक्नोमिक हिस्ट्री.* नई दिल्ली.

एरदोसी, जी. (1988). *अर्बनाईज़ेशन इन अर्ली हिस्टोरिक इंडिया.* बार इंटरनेशनल सीरीज़ 430. ऑक्सफोर्ड.

घोष, ऐ. (1973). *द सिटी इन अर्ली हिस्टोरिकल इंडिया.* शिमला.

मुखर्जी, बी.एन. (2002). *द इक्नोमिट फैक्टर्स इन कुशाण हिस्ट्री.* (दूसरा ऐडिशन). कलकत्ता.

रोमानिस, एफ. द एंड टकर्नीय, ऐ. (ऐड) (1997). *क्रोसिग्सः अर्ली मेडिटरेनियन कॉन्टेक्ट्स विद इंडिया.* नई दिल्ली.

थापलियाल, के. (1996). *गिल्ड्स इन ऐशियंट इंडिया.* नयी दिल्ली.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY